❀ दिवाकर-रश्मियाँ ❀

संग्राहक —

श्री अशोक मुनिजी

"साहित्य रत्न" जैन सिद्धान्त विशारद'

प्रकाशक —

श्री दिवाकर दि० ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राज)

२ श्री आर वी राठोड़ वकील
रविवार पठ नासिक सिटी

सम्पादक-

श्री अशोक मुनिजी म

'साहित्य रत्न' 'जैन सिद्धांत विशारद'

* * *

सम्पादक

श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा

* * *

प्रकाशक-

श्री दिवाकर दि ज्योति कार्यालय

मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राज)

२ श्री आर वी राठोड वकील

रविवार पेठ नासिक सिटी

" निवेदन "

प्रस्तुत ग्रंथ पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इस ग्रंथ में प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री चौथमलजी म. सा. के प्रवचनों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन है। जनता गुरुदेव से "जैन दिवाकर" नाम से ही अधिक परिचित है। वस्तुतः दिवाकरजी दिवाकर ही थे। दिवाकर के दर्शन से जैसे कमल खिल उठता है वैसे ही आपके दर्शन व प्रवचन श्रवण से हृदय कमल खिल जाता था। दिवाकर की प्रभा से अंधकार दूर भागता है वैसे ही आपके प्रवचनों के प्रभाव से अज्ञान का अंधकार दूर भागता था तथा जनता में स्वतः ही दुर्व्यसनों, दुर्गुणों, व कुरूढ़ियों के त्याग की प्रेरणा जागृत होती थी। आपके द्वारा कराये गये सामूहिक त्याग के स्मृति-चिह्न प्रगति के रूप में आज भी अनेक नगरों में विद्यमान है।

आपके व्यक्तित्व से आचार की उत्कृष्टता, विचार की विराट्ता, स्वभाव की सरलता, वाणी की मधुरता झलकती थी। हिन्दू मुसलमान बौद्ध ईसाई आदि किसी भी धर्म का अनुयायी आपके संपर्क में आया उसने आपकी अलौकिक आभा को पाया और अपने को उस आभा की प्रभा से प्रभावित

संग्राहक-
श्री अशोक मुनिजी म
साहित्य रत्न' 'जैन सिद्धांत विशारद'

सम्पादक
श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा

प्रकाशक -
श्री दिवाकर दि ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राज)
२ श्री आर बी राठोड वकील
रविवार पेठ नासिक सिटी

मुद्रक -
पं बसंतीलाल नलवाया
जैनोदय प्रेस, रतलाम

" निवेदन "

प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इस ग्रन्थ में प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री चौथमलजी म. सा. के प्रवचनों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन है। जनता गुरुदेव को 'जैन दिवाकर' नाम से ही अधिक परिचित है। वस्तुतः गुरुदेवश्री दिवाकर ही थे। दिवाकर के दर्शन से जैसे कमल खिल उठता है वैसे ही आपके दर्शन व प्रवचन श्रवण से हृदय कमल खिल जाता था। दिवाकर की प्रभा से अंधकार दूर भागता है वैसे ही आपके प्रवचनों के प्रभाव से अज्ञान का अंधकार दूर भागता था तथा जनता में रहने वाले दुर्व्यसनों, दुर्गुणों, व कुरूढ़ियों के त्याग की प्रेरणा जागृत होती थी। आपके द्वारा कराये गये सार्वजनिक त्याग के स्मृति-चिह्न पट्टों के रूप में आज भी अनेक नगरों में विद्यमान हैं।

आपके व्यक्तित्व में आचार की उच्चता, विचार की विशालता, स्वभाव की सरलता, वाणी की मधुरता झलकती थी। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई आदि किसी भी धर्म का अनुयायी आपके संपर्क में आया उसने आपमें अलौकिक आभा को पाया और आपकी ज्ञान आभा की प्रभा से प्रभावित

पाया। आपकी वाणी से ज्ञानामृत झरता था। नेत्रों से करुणा की शीतल सुखद ज्योति धारा बहती थी। प्रवचनों में विश्व-कल्याण की सरिता प्रवाहित होती थी। आपकी छाया में आने वाला व्यक्ति ताप व संताप की गर्मी को शांत करने वाली शीतलता का अनुभव करता था। आप धर्म के दूत तो थे ही। साथ ही कलम के धनी मानव-स्वभाव के चितेरे दया के अवतार अधमों के उद्धारक एवं मानवता की साकार मूर्ति थे।

आपका व्यक्तित्व जितना प्रभावक था वक्तव्य भी उतना ही प्रभावक था। आपकी वक्तृत्व शैली सरल, सरस व मर्म स्पर्शी थी श्रोताओं को चुम्बक के समान आकृष्ट करती थी। आप जीवन के हर पक्ष की इस ढंग से व्याख्या करते थे कि श्रोताओं को ऐसा अनुभव होता था कि मानो उन्हीं के मन का समाधान किया जा रहा है।

आपके प्रवचनों में गंभीर सिद्धान्तों को भी अत्यंत सरल भाषा व सुगम शैली में समझाया गया है। प्रत्येक प्रवचन प्रभावकारक प्रेरणा प्रदायक एवं रोचक है तथा अंतःकरण को छूता हुआ चलता है। प्रवचन इतने मधुर, सरस व हृदय स्पर्शी हैं कि एक बार पन्ना प्रारंभ कर देने पर तब तक उन्हें छोड़ने का मन नहीं होता है जब तक कि वे पूरे पढ़ नहीं लिए जाते हैं। पढ़ते समय पाठक आनन्द में निमग्न हो जाते हैं।

आपके प्रवचनों में जीवन की द्वन्द्व-दशाओं एवं उलझी हुई गुत्थियों से मुक्ति पाने का पथ-प्रदर्शन बड़ी ही सरल

सूक्तियों से किया गया है। उन सूक्तियों का सार प्रवचनों के प्रवाह में यत्र तत्र सूत्र रूप में मिलता है। उन्हीं सूत्रों व सूक्तियों का संकलन कर उन्हें प्रस्तुत ग्रन्थ का रूप दिया गया है। इन सूक्तियों में जीवन के व्यापक अनुभवों का सार, नीति वाक्यों का निचोड़, ज्ञान का नवनीत सन्निहित है। ये सूक्तियाँ मार्ग-दर्शन तो करती ही हैं साथ ही निराशा और विपत्ति के क्षण में स्फुरणा, प्रेरणा एवं प्रबल बल भी देती हैं। जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को बात की बात में सुलझा देने की विशेषता भी इन सूक्तियों में निहित है। सद्ग्रन्थों के सैकड़ों पृष्ठों को पढ़ने और सद्गुरुओं के घंटों व्याख्यान श्रवण का जितना प्रभाव पड़ता है उससे भी अधिक प्रभाव डालने में समर्थ गुरुत्व की सूक्तियाँ हैं। इनका प्रभाव सीधा हृदय पर पड़ता है जो तड़ित-तरंग की भांति सारे तन व मन को झंकृत व प्रफुल्लित कर देती है। ये सूक्तियाँ वे बहुमूल्य मणियाँ हैं, जिन्हें हृदय में संजोये रखने से अवसर आने पर अमूल्य निधि का काम देती हैं। ये विकारों के विनाश करने में अमोघ औषधि के समान हैं। ये सूक्तियाँ वे सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़ कर स्वर्ग व अपवर्ग में पहुंचा जा सकता है। वस्तुतः ये सूक्तियाँ जीवन-व्यवहार में पग पग और पल पल पर पथ प्रदर्शन का काम देने वाली हैं पतन के गर्त में गिरने से बचाने वाली हैं उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाली हैं आशा उत्साह व प्रेरणा का संचार करने वाली हैं।

प्रस्तुत संग्रह में सूक्तियों का विषयवार वर्गीकरण किया गया है तथा इन्हें इस प्रकार क्रम-बद्ध किया गया है कि

पाठको को प्रवाहमान निबंध के पढ़ने जसी रसानुभूति होती
रहे ।

प्रस्तुत ग्रंथ की सूक्तियों का सकलन अभी तक प्रकाशित
'दिवाकर दिव्य ज्योति' के बीस भागो में से किया गया है ।
इन सब भागो का प्रकाशन 'दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
ब्यावर स हुआ है । इन प्रवचन पुस्तकों का सपादन समाज
के मान्य मूर्धन्य विद्वान श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने बड़ा ही
सुन्दर किया है । प्रस्तुत सकलन का सपादन व वर्गीकरण
समाज के उदीयमान लेखक, गभीर चिंतक, व अनेक विषयों
के विद्वान श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा ने किया है । मने तो सकलन
सेवा ही की है । मुझ आशा है कि जीवन-निर्माण में यह ग्रंथ
अत्यंत उपयोगी व बहुमूल्य प्रमाणित होगा । यह सकलन कैसा
बन पड़ा है इसका निर्णय तो पाठक स्वयं कर सकेंगे ।

कानपुर
जन्माष्टमी

अकिंचन
अशोकमुनि जैन

ॐ

दिवाकर–रश्मियां

–: दान :–

(१)

किसी वस्तु पर से अपनी ममता उतार कर स्व पर कल्याण के लिए उसे अर्पित कर देना दान कहलाता है। दान धर्म की महिमा बड़ी विशाल है।

( )

जो पहले बोया उसे अभी पा रहे हो और जो अब बोओगे उसे आगे पाओगे। जो बोएगा ही नहीं वह क्या पाएगा? अतएव दान न दिया हो तो अब देना आरंभ करो, और यदि दिया हो तो देते समय एहसान न जतलाओ। यह मत सोचो कि मैं दान देकर दानपात्र पर एहसान कर रहा हूँ।

बल्कि यह विचार करो कि यह दान का अगाकार करने वाला मुझ पुण्य का अवसर दे रहा है। तुम स्वयं उसके प्रति कृतज्ञ रहो। ऐसी भावना करने से तुम्हारे दान का फल बड़ गुणा प्रशस्त बन जाएगा।

(३)

जो सम्पत्ति आज तुम्हें मिली है वह एक न एक दिन तो चली जाने वाली है। मरने पर साथ नहीं रहेगा। फिर उस दान करने का भाव में मन को अधिकारी क्यों नहीं बनना? परभव में पुण्य का भाव ही साथ रहता है, एक ही तरीका है और वह यही कि तू उदारभाव से, प्रेमपूर्वक दान दिये जा।

(४)

वर्ण माला में दो अक्षर हैं। उनमें से एक अक्षर नरक का विरोधी है और दूसरा मोक्ष का विरोधी है। वह दो वर्ण हैं– 'द' और 'ल'। दान दो वस्त्र दो, मकान दो और अभय दो यह सब नरक के विरोधी हैं और 'लाओ' 'लाओ' मोक्ष का विरोधी है अर्थात् धन लाओ, वस्त्र लाओ, स्त्री लाओ इस लाओ की लालसा से मोक्ष का विरोधी होता है।

(५)

भाइयो! यह बात समझने योग्य है कि दान देना उधार देना है और पाप करना कर्ज लेना है। इन दोनों का ही बदला मिलता है। जितना–जितना दान–पुण्य करोगे उतना

हो उतना पाओगे और जितना-जितना पाप करोगे उतना ही उतना भुगतना पड़ेगा।

(६)

दान में ममत्व के त्याग का एवं पर-उपकार की भावना हो मुख्य रूप में होनी चाहिए। कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर वाह-वाह लूटने के लिए जो दान दिया जाता है वह दान अशुद्ध हो जाता है। जो अपने दान का अधिक से अधिक विज्ञापन चाहते हैं अखबारों में मोटे-मोटे टाइपों में अपना नाम छपा देख कर फूले नहीं समाते। उनका इस प्रकार कीर्ति और प्रतिष्ठा के लिये दिया हुआ दान वैसा फल प्रदान नहीं करता जैसा कि करना चाहिए।

(७)

सच्चा देना तो ममता का त्याग करना है। ममता का त्याग कर दिया तो फिर उसका बदला पाने की कामना क्यों करते हो? अगर कामना करते हो तो तुम्हारा दान अशुद्ध है वह सच्चा दान नहीं है। दान पर मिलेगा तो अवश्य ही मगर पाने की कामना करने से उतना नहीं मिलता जितना मिलना चाहिए। अतएव विवेकवान पुरुष ऐसा विचार नहीं करते।

(८)

भाइयो! यों तो सभी दान उत्तम हैं किन्तु उन सब में जीवन की दृष्टि से आहारदान का विशेष महत्त्व है। संसारी

जावों के प्राणों का आधार आहार है। आहार देना एक प्रकार से जीवन देना है। आहार के अभाव में जीवन नहीं टिक सकता और धर्म क्रियाएं करने का भी अवकाश नहीं रहता।

(६)

नाना जन समस्त दानों में अभय दान को उत्तम कहते है। अभय दान की तुलना में न गायों का दान ठहरता है, न भूमि का दान ठहरता है और न अन्न का दान ही ठहर सकता है।

गाय भूमि और अन्न आदि सब वस्तुएं प्राणों के पीछे है। प्राण रह जाएं तो इन सब वस्तुओं का मूल्य है प्राण न रहे तो सब वृथा है। अतएव स्पष्ट है कि प्राणों के सामने प्राण ही प्रधान वस्तु है और इसलिए प्राण रक्षा करना अथवा किसी को अभयदान देना ही सबसे बड़ा दान है।

(१०)

अभयदान सब प्रकार के दानों में उत्तम दान माना गया है। प्राणों की रक्षा अभयदान है और प्राण सबको सबसे अधिक प्रिय होते हैं। जो वस्तु जितनी प्रिय है उसका दान उतना ही अधिक महत्व पूर्ण होता है। यही कारण है कि भगवान ने स्वयं अभयदान को सब दानों में उत्तम कहा है।

(११)

गृहस्थ धन आदि पदार्थों का संचय करता है। उन पर उसकी ममता भी होती है। अतएव ममता का त्याग करना

उपार्जन किया जाता है। उन पदार्थों के उपार्जन और संरक्षण आदि में आरम्भ-समारम्भ आदि से उत्पन्न हुए पापों का प्रक्षालन करने के लिए भी दान धर्म का सेवन करना आवश्यक है।

(१०)

कृपण और मायावी के हाथ से दान नहीं दिया जाता। दान उदारता का लक्षण है। जिसमें यह लक्षण होगा उसमें धर्म के प्रधान लक्षण भी स्वयं आ जाते हैं। उदारता के साथ क्षमा निर्लोभता आदि गुण स्वयं खिंचे चले आते हैं।

(१३)

शास्त्रों का दान देना, निर्ग्रन्थ प्रवचन अथवा दूसरे ग्रन्थों का दान देना जिससे जनता का अज्ञान दूर हो सके, ज्ञानदान कहलाता है। बहुत-से लोग लड्डू बनाकर नारियल आदि की प्रभावना करते हैं मगर सच्ची प्रभावना जिन शासन के सम्बन्ध में फैले हुए अज्ञान को दूर करने में है।

(१४)

दान देकर न पश्चात्ताप करना योग्य है न अभिमान करना और न एहसान समझना ही उचित है। वास्तव में अभिमान या एहसान की बात भी क्या है? किसान खेत में बीज बोकर अभिमान क्यों करे, एहसान किस पर करे? उसने अपने ही लाभ के लिए बीज बोया है।

(१५)

दानी जगत का अपने वश में कर लेता है। त्यागी देवता को भी अपनी महिमा से वश में करके उनके हृदय पर राज कर लेता है। अतएव दान देना मनुष्य का बड़ा भारी गुण है।

(१६)

जैसे बड़ का छोटा सा बीज जमीन में बोया जाता है किन्तु पानी का संयोग पाकर कालान्तर में वह हजारों को छिपा देने वाला विशाल वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार आहार दान देने से पुण्य का बीज भी विशाल रूप ग्रहण करके फल देता है।

(१७)

दान देने में आप को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता हो तो भी मैं यही कहूंगा कि आप उस कठिनाई को सहन करके भी दान दीजिए। दान के प्रभाव से आपकी कठिनाइयां उसी प्रकार विलीन हो जाएँगी जिस प्रकार प्रबल आँधी के वेग से मेघ की घटाएँ छिन्न भिन्न हो जाती हैं। याद रखिए दान महान फलदायी होता है।

(१८)

जो लोग धर्मात्मा की सहायता नहीं देते और पापियों के सामने अपनी थैलियों के मुंह खोल देते हैं वे क्या कर रहे हैं? याद रखो वे पत्थर की नाव पर बैठे हैं और उनके डूबने में देर नहीं लगेगी। उनका कहीं पता भी नहीं चलेगा।

शील :-

(१)

जिस भाव में शीलता की प्राप्ति हो वही शील व्रत है। जो कुशील का सेवन न करना हुआ सुशीलता को धारण करता है वह सहज ही आवागमन की परम्परा रूप समुद्र को उल्लंघन करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है

(२)

किसी प्राणी के साथ द्रोह या वैर विरोध न करना निवृत्ति है और अनुग्रह करना तथा दान करना प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति और निवृत्ति से मन में शील का स्वरूप पूर्ण होता है। शील रूपी रथ के यह दो पहिए हैं। इन्हीं से शील रथ अग्रसर होकर शीलवान को अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है।

(३)

जैसे कल्पवृक्ष सभी चिन्तित और अभिलषित पदार्थों का दाता है उसी प्रकार शील से भी उन्हीं इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

(४)

इस संसार में शील के समान शान्ति और विश्रान्ति देने की शक्ति किसी में भी नहीं है। इस लोक में और परलोक में भी शील से अनन्त शान्ति प्राप्त होती है।

— तप —

(१)

जैसे सोने में लगा हुआ मल आग में सोने को तपाने से दूर हो जाता है, उसी प्रकार अनादि काल से आत्मा के ऊपर जो मलिनता लगी हुई है वह तपस्या की आग से नष्ट हो जाती है। तपस्या आत्म शुद्धि का प्रधान कारण है।

(२)

जैसे अग्नि के निमित्त से पारा जल जाता है और दूध निराविल हो जाता है उसी प्रकार तपस्या की तीव्र अग्नि जब प्रज्वलित होती है तो कर्म सब भस्म हो जाते हैं और आत्मा शुद्ध हो जाता है।

(३)

तपस्या से इन्द्रियों का दमन होता है और मन काबू में आ जाता है। इस स्थिति में ध्यान अच्छा, स्थिर और अखण्ड होता है।

(४)

याद रखना, मन को वश में करने का सबसे अधिक कारगर और श्रेष्ठ उपाय तपस्या करना ही है। तपस्या किये

बिना इन्द्रियो पर काबू नही पाया जा सकता और न मन को ही वश में किया जा सकता है।

(५)

जैसे जगत को जलाने मे दावानल प्रबल है। दावानल को शान्त करने में मेघ शक्तिशाली है। और मेघ को छिन्न भिन्न करने में वायु समर्थ होता है। उसी प्रकार कर्मों को चकनाचूर करने मे तपश्चर्या समर्थ होती है।

(६)

त्याग और तपस्या की दवा का सेवन करने से समस्त रोग-शोक दूर हो जाते हैं। ताव और निजारी जैसे रोग उसके पास भी नही फटक सकते। इस दवा का सेवन करने से निरजन पद की प्राप्ति होती है और अनन्त अक्षय एव अव्याबाध आनन्द भी प्राप्त होता है।

(७)

लोग समझते है कि आग में वस्तुओ को जला देना यज्ञ है परन्तु नही, यज्ञ तपश्चर्या का नाम है जिसमें पापो को जला कर भस्म किया जाता है और जिसमे आत्मा निर्मल हो जाती है।

(८)

जिसने मुखतावश भग खाली है, वह उसके नशे से बचना चाहे तो दुनिया मे ऐसी भी चीजें मौजूद हैं जिनके

सेवन से नशा नहीं चढ़ता । इसी प्रकार बद्ध कर्मों को निष्फल बनाने के लिए भी भगवान ने एक उपाय बतलाया है और वह उपाय है—तपश्चरण करना ।

(९)

कई लोग जप करते हैं और कहते हैं—महाराज, हम जप करते-करते इतने वर्ष हो गये मगर अभी तक कोई सिद्धि नहीं हुई ! मगर उन्हें समझना चाहिए कि उसने जप तो किया है मगर जप के साथ तप नहीं किया । तप के बिना सिद्धि कैसे हो सकती है ? दुनियाँ में इसीलिए जप तप के साथ लगा है ।

(१०)

संसार में जितने भी महात्मा हो गये हैं और जिनकी महिमा का जगत में विस्तार हुआ है उन सबने तपश्चरण किया था । तपश्चरण के बिना आज तक कोई भी पुरुष महात्मा नहीं बन सका तो परमात्मा बनना तो दूर रहा !

(११)

किसी भी महापुरुष का जीवन लीजिए-आपको सब में एक ही बात मिलेगी । मानो सबकी जीवनी एक ही चक्र पर घूमती है । वह चक्र है तपस्या का ! प्रत्येक महापुरुष के जीवन में तप का ही तेज उद्भासित होता है । महापुरुष का परिचय अर्थात् तप की शक्ति का परिचय ! तपस्या के प्रताप

से महापुरुष का जन्म होता है। तप के प्रभाव से ही यह अनो-खा दृश्य देखने मिलता है।

(१२)

प्राचीन उदाहरण अनेकों ही रहा, तपस्या की सख्या में मौजूद हैं। पर तपस्या के प्रभाव का आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। कलकत्ता में और दूसरे स्थानों में गांधीजी ने अपने जीवन में कई बार उपवास किये। उन्होंने भोजन त्याग दिया। उसके प्रभाव से कठोर से कठोर और पापी से पापी मनुष्यों के हृदय भी बदल गये। उन्हें भी तपस्या के सामने झुकना पड़ा।

(१३)

स्वेच्छापूर्वक, पारमार्थिक दृष्टि से कष्टों का सहन कर लेना तप है। तप का बहिष्कार करने का मतलब यह होगा कि जब कोई कष्ट आवे तो उसे स्वेच्छा पूर्वक सहन न किया जाय। सहन न करने मात्र से कष्टों का आना तो रुक नहीं जायगा तप को त्याग देने से सहन करने की शक्ति अवश्य नष्ट हो जायगी। ऐसी स्थिति में जीवन कितना कष्टमय और दीनता मय हो जायगा यह कल्पना ही बड़ी भयावह है।

(१४)

भगवान ने उपवास की तपस्या का महत्त्व बताने के लिए बाह्य तपों में अनशन तप को सब से पहले गिना है। तपस्या

के लिए भी अष्टमी, चतुर्दशी और पक्खी के दिन उपवास करने का विधान है। अनशन करने से आत्मा की शुद्धि होती है, कर्मों की निर्जरा होती है, इन्द्रियां वश में हो जाती हैं, मन पर काबू प्राप्त किया जा सकता है, ज्ञान ध्यान में होने वाले प्रमाद को दूर किया जा सकता है। इन सब लाभों को ध्यान में रखकर भगवान् तीर्थंकर ने अनशन तप पर विशेष रूप से बल दिया है।

(१५)

तपस्या में लौकिक और लोकोत्तर-दोनों प्रकार का फल प्रदान करने की प्रबल शक्ति है। लौकिक प्रयोजन के लिए की गई तपस्या लौकिक कार्य को सिद्ध करती है और लोकोत्तर आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए की जाने वाली तपस्या से लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि होती है। मगर तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती है।

~ भावना ~

(१)

जिसकी जसी भावना होती ह, उस वसी ही सिद्धि मिलती ह ।

(२)

भाइयो ! जो चित्त की चपलता का निरोध कर देता है, मन को इधर उधर नही भटकने देता और जो आत्मा के गुणो में ही रमण करता ह, वह मनुष्य ससार सागर मे पार हो जाता ह ।

(३)

मानसिक विचार ही मनुष्य को डुबाने वाले और उबारने वाले हैं । अगर आपका विचार शुद्ध होगा तो उच्चार भी शुद्ध होगा और विचार एव उच्चार शुद्ध होगा तो आचार भी शुद्ध होगा ।

(४)

दान, शील और तप के साथ भावना को जो अत म स्थान दिया गया है वह इसीलिए कि दान आदि का फल

अन्त मे भावना के अनुसार ही प्राप्त होता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। सद्भावना के बिना कोई भी क्रिया पूर्ण फलदायक नही होती।

(५)

मन चिन्तामणि रत्न से भी अधिक मूल्यवान् है। क्योकि चिन्तामणि चिन्तित पदार्थ की पूर्ति करती है परन्तु चिन्तन तो मन से ही किया जायगा ? मन न होगा तो किसके इष्ट पदार्थ का चिन्तन कराओगे ? चिन्तामणि की उपयोगिता की पहिचान कराने वाला भी मन ही है। अतएव मन उससे भी अधिक मूल्यवान् सिद्ध होता है। वह भाग्योदय से आपको सहज ही प्राप्त है फिर भी उसका दुरुपयोग क्यो करते हो ? मन का दुष्प्रणिधान करना चिन्तामणि से कपाल फोडने की अपेक्षा भी अधिक मूर्खता है।

(६)

सचाई यह है कि कोई किसी को सुख दुःख नही पहुंचा सकता। मनुष्य का मन ही उसके दुःख की सृष्टि करता है और वही उसके सुख को उत्पन्न कर सकता है। ससार चक्र मे भ्रमण करने वाला मन ही है।

(७)

केवल त्यागी का वेष धारण करने से काम नही चलेगा। भोग न भोगने मात्र से भी काम नही चलेगा, ...

पान के लिए तो मन को त्यागी बनाना पड़गा । विषयों के त्याग के साथ ही साथ विषयों की वासना का भी त्याग करना आवश्यक है । जब वासना दूर हो जाय तभी त्याग की परिपूर्णता समझनी चाहिए । वासना को दूर करने के लिए स्वाध्याय ध्यान चिन्तन मनन की आवश्यकता है ।

(७ ग)

तुम दान शील तप और भावना आदि के रूप में कोई धर्म क्रिया करो उसके फल की वांछा मत करो । सकाम क्रिया करने से क्रिया के फल में विपरीतता और न्यूनता आ जाती है और निष्काम भाव से क्रिया करने पर पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ।

(८)

बिल्ली अपने बच्चों को भी मुँह से पकड़ती है और चूहे को भी उसी मुँह से पकड़ती है । परन्तु दोनों के पकड़ने में भावना का कितना भेद रहता है ।

(६)

भाई ! भले तू त्रिदंड को धारण कर । भले नग्न रह । मूड मुड़ा ले या सिर पर जटा का भार धारण करके फिर । भले निरा अंधेरी गुफा में रह अथवा ऊँचे पर्वत की चोटी पर निवास कर । भले शिला पर आसन जमा कर बैठ
के सिद्धांतों का ... [illegible] तेरा हृदय यदि

इसमें कुछ भी नहीं होना-जाना है। आत्मा का कल्याण तो तभी होगा, जब तू अपने हृदय को शुद्ध बनाएगा।'

(१०)

अगर सचमुच भलाई चाहते हो तो दिल को साफ करो। हृदय को पवित्र भावनाओं के जल में स्नान कराओ। तुम चाहे कहीं किसी भी तीर्थ में जाकर नहालो, गंगा, यमुना, या पुष्कर में गोते मार आओ, किन्तु जब तक दिल साफ नहीं है तो आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं।

(११)

मन के द्वारा किया हुआ पाप ही पाप कहलाता है। मन के सहयोग के बिना केवल शरीर द्वारा किया गया आचरण पाप नहीं। लोक व्यवहार में ही देखो। शरीर से जिस प्रकार *प्रियतमा का आलिंगन किया जाता है उसी प्रकार पुत्री का* भी आलिंगन किया जाता है। शारीरिक क्रिया से कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु मन में अन्तर होता है। यही कारण है कि दोनों की भावना में अन्तर होने से एक क्रिया लोक में दूसरी दृष्टि से देखी जाती है और दूसरी क्रिया दूसरी दृष्टि से। दोनों में कितना अन्तर है? यह अन्तर मनोभावना के कारण ही है।

(१२)

वैद्य समझता है कि अगर यह बीमार अन्न खाएगा तो इसका रोग बढ़ जायगा ऐसा समझ कर वह रोगी को अन्न

नही खाने देता। दूसरा आदमी द्वेषभाव से, किसी को भूखा रख कर मार डालने के विचार से किसी को अन्न नही खाने देता। मोटे तौर पर दोनो का काम समान मालूम होता है। पर दोनों अन्न खाने से रोकने वालो की भावना मे बड़ा अन्तर है। एक जीवित रखने की भावना से रोकता है और दूसरा मार डालने की भावना से रोकता है। जब दोनो की भावनाएँ बिलकुल भिन्न-भिन्न है-एक दूसरे से एकदम विपरीत हैं तो क्या दोनो को समान फल की प्राप्ति होगी ? नही ऐसा कदापि नही हो सकता। प्रकृति के राज्य मे ऐसा अंधेर नही है। जिसकी जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। मुनिजन कल्याण-भावना से प्रेरित होकर, पाप कर्मों के त्याग का उपदेश देते है अतएव उन्हें अन्तराय कर्म का बंध नही होता, वरन् उपदेश देने से उनके पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

(१३)

भावना के भेद से एक सरीखे कार्य के फल मे भी महान् अन्तर पड़ जाता है। अतएव सच्चा समझदार और पंडित वही है जो पापो से डरकर अपनी भावना को पवित्र और पुण्यमय रखता है। अन्तःकरण में कषाय को जागृत नहीं होने देता। कदाचित कोई सांसारिक कार्य करना पड़ता है तो भी यतना रख कर अधिक पाप से बचने का प्रयत्न करता है।

(१४)

मरुदेवी माता हाथी के हौदे पर गृहस्थ वेष में बैठी थी। गृहस्थ के वेष में थी तो गहने और कपड़े भी पहने होंगे फिर भी भावना शुद्ध हो जाने के कारण उन्हें उसी समय केवल ज्ञान हो गया और मोक्ष भी प्राप्त हो गया। क्या रुका उनका मोक्ष धन से ? नहीं ! भाइयो ! पाप धन में नहीं, मन में है ?

(१५)

मन को जीतने में ही असली जीत है। और मन के हारने से हार है। तुम व्रत करो, उपवास करो कुछ भी करो, जब तक मन को न जीत लोगे तुम्हारा उद्देश्य सफल न होगा।

(१६)

मन को जीत लेने पर पाँचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो जाती है।

(१७)

भावना को पवित्र में
प्रकार की भी हानि
को पवित्र नहीं बनाते
सकते हो तो अपवित्र
भला नहीं चाहते तो कम
पराई-भलाई सब किये मन
इसमें ही अपना कल्याण

(१८)

भाइयो! यदि तुम कभी किसी का अनिष्ट न करो और न सोचो। दूसरे का अनिष्ट करना अपना ही अनिष्ट करना है। दूसरों का अहित सोचने से उनका अहित हो ही जायगा, यह कौन कह सकता है। परन्तु सोचने वाले का अहित होने में लेश मात्र भी शंका नहीं है। श्री कृष्ण को मारने के लिए कंस ने कितने प्रयत्न किये परन्तु कृष्णजी का बाल भी बाँका न हुआ। जिस मारने का प्रयत्न किया था उसी के हाथों से कंस मारा गया अतएव कभी किसी का बुरा मत सोचो।

(१९)

अशुभ विचार करने से विचार करने वाले का ही अहित होता है। किसी के बहुत या चाहने से दूसरे का तो कुछ नहीं सकता किसी के चाहने से कोई दरिद्र या दुःखी नहीं हो सकता। इसके विपरीत दूसरों का बुरा चाहने वाला अपना बुरा स्वयं ही कर लेता है।

(२०)

आर्तध्यान करोगे तो क्या पाओगे? प्रथम तो दुःख भोगते समय हो आर्तध्यान के कारण यह दुःख अत्यन्त दुस्सह प्रतीत होगा उसकी उग्रता बढ़ जायगी। दूसरे तुम्हारी सहन शक्ति का ह्रास हो जायगा। तीसरे, भविष्य के लिए पुनः अशुभ कर्मों का बंध होगा। अतएव जब दुःख सहना अनिवार्य है। तो हिम्मत रक्खो धैर्य रक्खो सम भाव को मत खोओ।

(७१)

जगत में प्रत्येक जीव के साथ पुण्य और पाप लगे हुए हैं। और पुण्य पाप का मुख्य आधार जीव के परिणाम हैं। अतएव इस बात का निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि बुरे विचार कभी उत्पन्न न हो सकें।

(७२)

मनुष्य का जीवन यथार्थ में उसकी आन्तरिक भावनाओं से ही परिचालित होता है अथवा यों कहना चाहिए कि वह भावनाओं का ही बाह्य रूप है। भावना से ही नरक का निर्माण होता है और भावना से ही स्वर्ग कि सृष्टि होती है।

(७३)

इस समय तू अकडता फिरता है। कहता है-कौन मेरा कुछ बिगाड सकता है। मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं। थोड़े से पुद्गल इकट्ठे कर लिये कि बडबडाने लगा और अपने में नहीं समाने लगा। पर आगे की भी कुछ सोचता है कि नहीं? यह पूंजी तेरा उद्धार कर देगी? ऊँची हवेली की छत तुझे स्वर्ग में पहुंचा देगी? नहीं, तेरा उद्धार तेरी आत्मा से होगा। मन को जीतने से ही तू पार लग सकेगा, अन्यथा नहीं।

(७४)

अन्य अन्य धर्माचरण करने के लिये कुछ द्रव्य खर्च करना पडता है या कष्ट उठाना पडता है, किन्तु अपनी भावना

असली लाल रंग चढेगा तो बढिया मलमल पर ही चढेगा। उत्तम मलमल केसरिया रंग मे डालते ही सुंदर रंगी हुई दिखने लगती है, उसी प्रकार स्वच्छ हृदय वाले पर धर्म का सुंदर रंग चढता है। जो मलमल के समान प्राणी है उन पर वीतराग देव की वाणी रूप केसरिया रंग तत्काल ही चढ जाता है। किंतु जैसे मलिन वस्त्र पर रंग नही चढता उसी प्रकार मलिन चित्त मनुष्य का मन भी धर्म के रंग में नही रंगता। बडा मुश्किल हो जाता है उनके चित्त पर धर्म का रंग चढना। इस रंग में रंगने के लिए पुण्य की आवश्यकता होती है।

(३०)

त्रिफला की फाकी लेना सुखद नही जान पडता किंतु जब पेट स्वच्छ हो जाता है और भोजन की रुचि बढ जाती है और तबीयत हल्की महसूस होती है तो कितनी प्रसन्नता होती है इसी प्रकार अन्त करण को शुद्ध करने के लिए त्रिफला के समान जब रत्नत्रय का सेवन किया जाता है तपस्या और संयम की आराधना की जाती है तब कष्ट होता है किन्तु उस कष्ट को कष्ट न समझकर जो समभाव रखते हैं उन्हे केवल ज्ञान आदि फल की प्राप्ति होने पर कितना आनंद मिलता है।

(३१)

मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरला ही माई का लाल होता है। मगर

धन्य वही है और सुखी भी वही है जो अपने मन पर सवार होता है।

(३२)

मन भले ही चटुल चपल, ढीठ और विगड़ल क्यों न हो, आखिर वह वशीभूत किया जा सकता है। आत्मा में उसको काबू में लाने की शक्ति है। आत्मा की शक्ति के सामने वह पराजित हो जाता है। आत्मा स्वामी है, मन उसका अनुचर है। मगर आत्मा ही जब अपने स्वरूप को भूलकर मन का चर बन जाता है तब मन उसे दुःखों और भयानक यातनाओं के मार्ग में ले जाता है। अतएव जो आत्महित के अभिलाषी है, उन्हें अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा मन पर नियंत्रण स्थापित करना चाहिए।

(३३)

चित्त जब कभी कुमार्ग की ओर जाने लगे, उसी समय उसे रोक दो। जैसे गलत रास्ते पर जाने को उद्यत हुए घोड़े की लगाम खींच ली जाती है। ऐसा करने से धीरे-धीरे वह आपके अधीन हो जायगा और फिर कुमार्ग की ओर जाना ही पसन्द नहीं करेगा।

(३४)

लोक में कहावत है—निकम्मी लुगाई को नाते जाना सूझता है। यह कहावत चाहे जैसी हो पर मन के सम्बन्ध में

ठीक बठना है। निकम्मा मन पाप की ओर दौडता है। अत एव इस काम म लगाए रखना योग्य है।

(३५)

मन कभी बेकार नहीं रहता। यह ऐसा भूत है कि कभी क्षण भर भी खाली नहीं रहता अतएव उसे उलझाये रखने के लिए धर्म के आराम (उद्यान) मे विचरण करना उचित है। मन को आत्म-चिन्तन तत्व चिन्तन, श्रुत परिशीलन और बारह अनुप्रेक्षाओ के चिन्तन आदि मे लगाये रखना चाहिए।

(३६)

अगर आप चाहते है कि आपका मुखमण्डल दर्शनीय बने सुन्दर हो तो आप अन्त करण म पवित्र भावनाए उत्पन्न कीजिए। आपकी भावना जितनी उच्चकोटि की होगी, मुख मण्डल का सलौनापन भी उसी उच्चकोटि का होगा।

(३७)

अपने मन मे जसे विचार होगे, वसे दूसर के विचार हो जाएँगे। अगर आपके हृदय म जगत के समस्त जीवो क प्रति मैत्री का भाव उत्पन्न हो गया है और शत्रुता के लिए किसी भी कोने में जरा भी अवकाश नही रहा है तो समझ लीजिए कि सारा जगत आपको भी मित्र भाव से देखेगा। आपको किसी स भय खाने की आवश्यकता नहीं है।

(३८)

' भलाई के विचार बड़ी कठिनाई से आते हैं लेकिन बुरे विचार आने में देर नहीं लगती। महल बनाने में वर्ष बीत जाते हैं मगर गिराने में क्या देर लगती है!

(३९)

भावना के प्रभाव से केवल-ज्ञान और मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। अतएव जो बने सो करो और जो न बन सके उसके लिए भावना रखो तो भी आपको सन्तोष होगा।

(४०)

यद्यपि पानी में कटुकता नहीं है, नशा उत्पन्न करने का गुण नहीं है, और मारने की शक्ति भी नहीं है फिर भी अफीम के संसर्ग के कारण उसमें यह सब उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार दान, शील तप, भावना, व्रत, प्रत्या-ख्यान आदि स्वभावतः अशुद्ध नहीं हैं, किन्तु अशुद्ध श्रद्धा के कारण-संसर्ग दोष से उनमें अशुद्धता आ जाती है।

(४१)

जिसकी धारणा जैसी बन जाती है, वह सभी घटनाओं को और सभी तथ्यों को उसी रूप में ढाल लेता है। जिसकी आँखों पर जैसे रंग का चश्मा लगा होगा उसे सब वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई देने लगेंगी।

(४२)

प्राय लोग भय से प्रेरित होकर ही अपने मन में भूत प्रेत की कल्पना कर लेते हैं और उनकी भावना का भूत ही उन्हें क्षति पहुँचाता है। भावना में बडी शक्ति है। वह भूत न होने पर भी भूत को खडा कर देती है, मनुष्य को विह्वल बना देती है और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है, जैसी कि वास्तविक भूत भी नहीं पैदा कर सकता। यह एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता ही है।

(४३)

पाप कर्म का उपार्जन मन से ही किया जाता है, तन से नहीं। जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया जाता है, उसी शरीर से पुत्री का भी आलिंगन किया जाता है। मगर दोनों के आलिंगन में भावना का कितना महान अन्तर होता है।

(४४)

खोटे काम सूझते हैं जब खोटे दिन आ जाते हैं।

-: अहिंसा :-

(१)

दया धर्म के बिना धर्म कैसा ? सब धर्मों का मूल दया है। जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म नहीं। दया के विकास के लिए ही अन्य सब धर्मों का विधान है।

(२)

जैसे आप सुख चाहते हैं वैसे ही अन्य प्राणी भी सुख चाहते हैं। और जैसे आप दुःख से बचना चाहते हैं उसी प्रकार अन्य समस्त प्राणी भी दुःख से बचना चाहते हैं ऐसा समझकर अन्य प्राणियों के प्रति व्यवहार करो। यही अहिंसा धर्म है। यही शान्ति का मार्ग है।

(३)

मन से, वचन से और शरीर से किसी को पीड़ा मत पहुँचाओ। निश्चित रूप से समझलो कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाना अपने लिए दुःखों का बीज बोना है और दूसरों का दुःख मिटाना अपना दुःख मिटाना है।

(४)

अगर स्वयं सुखी बनना चाहते हो तो दूसरों को सुखी

बनाओ। दुःख से बचना चाहते हो तो दूसरों को दुःख से बचाओ। अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों का कल्याण करो।

(५)

हे भव्य जीवो ! यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो किसी के सुख मे बाधक मत बनो। यदि तुम अपने लिए दुःख को अनिष्ट समझते हो तो दूसरो को दुःख न पहुँचाओ। जिस प्रकार स्वय जीवित रहना चाहते हो उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं। कोई मरना नही चाहता। अत किसी के प्राणों का वियोग मत करो।

(६)

अगर आपके अन्तःकरण में दया और प्रेम का स्रोत बहता होगा तो वह आपके विरोधी के अन्तःकरण को भी शीतल बना देगा। आपकी अहिंसा का झरना आपके प्रतिपक्षी के हृदय के वैर और क्रोध की आग को बुझा देगा।

(७)

जब साधक पूरी तरह निर्वैर हो जाता है तो प्रतिपक्षी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। जसे किसी को क्रुद्ध देखकर सामने वाले के हृदय मे भी क्रोध का आवेग आ जाता है उसी प्रकार किसी को करुणाशील देख कर सामने वाले के हृदय में भी करुणा का सचार हो जाता है। कदाचित करुणा का सचार न भी हो तो भी उसकी क्रूरता तो उपशान्त हो ही जाती है।

(८)

सुखी होना चाहते हो तो दूसरा को सुखी करो शांति चाहते हो तो दूसरा को शांति पहुचाओ दु खों से बचना चाहते हो तो दूसरा को दु ख स बचाओ। कष्ट नही चाहते हो तो दूसरा को कष्ट मत दो।

(९)

जो वस्तु जितनी अधिक प्रिय ह उससे वंचित होने मे उतना ही अधिक दु ख होता ह। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। आप अपने ही अन्त करण से पूछ सकते हैं कि आपको सर्वाधिक प्रिय क्या है? प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नही। प्राणो की रक्षा करने के लिए आप सभी कुछ त्याग सकते ह। यही कारण है कि प्राणो का नाश करना सबसे बडा पाप माना गया ह।

(१०)

आप अपने जीवन के लिए दूसरो की सहायता लेते हैं और उस सहायता क अभाव में जीवित नही रह सकते, तो क्या आपका भी यह कर्त्तव्य नही ह कि आप भी दूसरो की सहायता करें? जो दूसरा से लेता ही लेता ह और बदले में कुछ देता नही है, वह दीवालिया ह। वह दुनिया में हिकारत की निगाह से देखा जाता ह। उसे लोग घृणास्पद समझते हैं। क्या तुम ऐसे बनाना चाहते हो?

(११)

मृत्यु को वही जीत सकता है जो मृत्यु से डरता नहीं है और जो जीवन और मरण को समान भाव से अपनाने के लिये तैयार रहता है। मृत्यु को वह जीत सकता है जो छोटे बड़े समस्त प्राणियों को अपने निमित्त से होने वाली मृत्यु से बचाता रहता है जो स्वयं मर कर भी दूसरों की मृत्यु से बचाता है, वही मृत्यु-विजेता बन सकता है। मौत की कल्पना से ही कांपने वाला कब मौत से बच सकता है? जो अपने प्राणों की रक्षा के लिये दूसरे के प्राण हरण करता है। वह अपनी मौत को न्योता देकर निकट बुलाता है, उस एक बार नहीं बार बार मौत का शिकार बनना पड़ता है।

(१२)

किसी को अधिकार नहीं कि वह तुम्हारे प्राण रूपी परम धन को लूटे उसी प्रकार तुम्हें भी अधिकार नहीं कि तुम किसी के प्राणों के ग्राहक बनो। सब इस नीति का अनुसरण करोगे तो सभी सुखी रहोगे। इसके विरुद्ध व्यवहार करोगे तो भूतल कत्ल खाना बन जायगा। संसार अशान्ति का घर हो जायगा। हिंसा चाहे पेट पालने के लिए की गई हो, चाहे जिह्वा लोलुपता के वशीभूत होकर की गई हो चाहे धर्म के नाम पर की गयी हो हर हालत में पाप है। और हिंस्य तथा हिंसक दोनों को अशान्ति और व्यथा देने वाली है।

(१३)

भाइयो ! पर प्राणी के प्राणों को अपने ही प्राणों के समान समझो। किसी के प्राण मत लूटो। जीओ और जीने दो। इस सुनहरे सिद्धान्त को यदि संसार स्वीकार कर सके तो जगत में अपूर्व शान्ति का संचार हो जाय ! फौज, पुलिस, कारागार न्यायालय, और वकील की आवश्यकता ही किसी को न रह जाय।

(१४)

जैसे आग से आग शान्त नहीं होती, उसी प्रकार हिंसा से हिंसा शान्त नहीं होती हिंसा का दमन करने के लिए भगवती अहिंसा की आवश्यकता है।

(१५)

अहिंसा अत्यन्त सरल है। इसमें छल-कपट के लिये रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है। वह विशुद्ध है और उद्योत करने वाली है सभी धर्मों का अहिंसा धर्म में ही समावेश हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे हाथी के पैर में सभी के पैरों का समावेश हो जाता है।

(१६)

दूसरों को सुख पहुंचाओगे तो स्वयं सुखी होओगे। जब तुम अपने घर बना हलुआ पड़ोस में भेजते हो तो पड़ौसी भी बदले में तुम्हारे यहां भेजता है। इसी प्रकार तुम दूसरों को सुख दोगे तो स्वयं भी सुख पाओगे।

(१७)

मनुष्य में अधिक शक्ति है तो यह शक्ति दुर्बलों की सहायता में व्यय होनी चाहिए न कि उन्हें सताने में, उनका गला घोटने में।

(१८)

हमारे जीवन में अहिंसा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा ही हमारा पालन पोषण और रक्षण करती है। सत्य यह है कि अहिंसा जीवन है और हिंसा मौत है। यही कारण है कि धर्म में अहिंसा को सर्व प्रथम स्थान दिया है। वास्तव में अहिंसा के महत्त्व को देखते हुए उसे यह प्रधान स्थान मिलना ही चाहिए।

(१९)

जैसे अपने हित को महत्त्व देते हो, उसी प्रकार दूसरों के हितों को भी महत्त्व दो। यही अहिंसा का संदेश है। इसी में जगत की शान्ति निहित है। जुल्म और अत्याचार किसी के हक में अच्छे नहीं है।

(२०)

अहिंसा जीवन है अमृत है और हिंसा मृत्यु है, जहर है। अहिंसा का त्याग करना जीवन का ही खात्मा करना है।

(३८)

भलाई के विचार बड़ी कठिनाई से आते हैं लेकिन बुरे विचार आने में देर नहीं लगती। महल बनाने में वर्षों बीत जाते हैं मगर गिराने में क्या देर लगती है?

(३९)

भावना के प्रभाव से बंधन-नाश और मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। अतएव जो बन सके करो और जो न बन सके उसके लिए भावना रक्खो तो भी आपका कल्याण होगा।

(४०)

यद्यपि पानी में कटुकता नहीं है, नशा उत्पन्न करने का गुण नहीं है, और मारने की शक्ति भी नहीं है फिर भी अफीम के संसर्ग के कारण उसमें यह सब उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार दान, शील, तप, भावना, व्रत, प्रत्याख्यान आदि स्वभावतः अशुद्ध नहीं हैं किन्तु अशुद्ध श्रद्धा के कारण-संसर्ग दोष से उनमें अशुद्धता आ जाती है।

(४१)

जिसकी धारणा जैसी बन जाती है, वह सभी घटनाओं को और सभी तथ्यों को उसी रूप में ढाल लेता है। जिसकी आँखों पर जैसे रंग का चश्मा लगा होगा उसे सब वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई देने लगेंगी।

(४२)

प्राय लोग भय से प्रेरित होकर ही अपने मन में भूत प्रेत की कल्पना कर लेते हैं और उसकी भावना का भूत ही उन्हें क्षति पहुँचाता है। भावना में बड़ी शक्ति है। वह भूत न होने पर भी भूत को खड़ा कर देती है, मनुष्य को विह्वल बना देती है और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है, जैसी कि वास्तविक भूत भी नहीं पैदा कर सकता। यह एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता ही है।

(४३)

पाप कर्म का उपार्जन मन से ही किया जाता है, तन से नहीं। जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया जाता है उसी शरीर से पुत्री का भी आलिंगन किया जाता है। मगर दोनों के आलिंगन में भावना का कितना महान् अन्तर होता है

(४४)

खोटे काम सूझते हैं जब खोटे दिन आ जाते हैं।

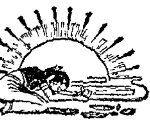

बनाओ । दुःख से बचना चाहते हो तो दूसरों को दुःख से बचाओ । अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों का कल्याण करो।

(५)

हे भव्य जीवो ! यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो किसी के सुख में बाधक मत बनो । यदि तुम अपने लिए दुःख को अनिष्ट समझते हो तो दूसरों को दुःख न पहुँचाओ । जिस प्रकार स्वयं जीवित रहना चाहते हो उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं । कोई मरना नहीं चाहता । अतः किसी के प्राणों का वियोग मत करो ।

(६)

अगर आपके अन्तःकरण में दया और प्रेम का स्रोत बहता होगा तो वह आपके विरोधी के अन्तःकरण को भी शीतल बना देगा । आपकी अहिंसा का झरना आपके प्रतिपक्षी के हृदय के वैर और क्रोध की आग को बुझा देगा ।

(७)

जब साधक पूरी तरह निर्वैर हो जाता है तो प्रतिपक्षी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है । जैसे किसी को क्रुद्ध देखकर सामने वाले के हृदय में भी क्रोध का आवेग आ जाता है उसी प्रकार किसी को करुणाशील देख कर सामने वाले के हृदय में भी करुणा का संचार हो जाता है । कदाचित् करुणा का संचार न भी हो तो भी उसकी क्रूरता तो उपशान्त हो ही जाती है ।

(८)

सुखी होना चाहते हो तो दूसरा को सुखी करो शांति चाहत हो ता दूसरा का शाति पहुचाओ दु ख स बचना चाहने हो तो दूसरा का दु ख से बचाओ। कष्ट नही चाहते हो ता दूसरो को कष्ट मत दो।

(६)

जो वस्तु जितनी अधिक प्रिय है उसस वचित होने म उतना ही अधिक दु ख होता ह। यह बतलान का आवश्यकता नही। आप अपने ही अन्त करण से पूछ सकते है कि आपका सर्वाधिक प्रिय क्या है ? प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नही। प्राणा की रक्षा करने के लिए आप सभी कुछ त्याग सकते है। यहा कारण है कि प्राणा का नाश करना सबसे बडा पाप माना गया है।

(१०)

आप अपने जीवन के लिए दूसरो की सहायता लेते हैं और उस सहायता के अभाव मे जीवित नही रह सकते तो क्या आपका भी यह कर्तव्य नही ह कि आप भी दूसरो की सहायता करें ? जो दूसरो से लेता ही लता ह और बदले में कुछ देता नही ह वह दीवालिया ह! वह दुनिया में हिकारत की निगाह से देखा जाता ह। उसे लोग घृणास्पद समझते हैं। क्या तुम ऐसे बनाना चाहते हो ?

(११)

मृत्यु को वही जीत सकता है जो मृत्यु से डरता नहीं है और जो जीवन और मरण को समान भाव से अपनाने के लिये तयार रहता है। मृत्यु को वह जीत सकता है जो छोटे बड़े समस्त प्राणियों को अपने निमित्त से होने वाली मृत्यु से बचाता रहता है जो स्वयं मर कर भी दूसरों की मृत्यु को बचाता है, वही मृत्यु-विजेता बन सकता है। मौत की कल्पना से ही कांपने वाला कब मौत से बच सकता है? जो अपने प्राणों की रक्षा के लिये दूसरे के प्राण हरण करता है। वह अपनी मौत को न्योता देकर निकट बुलाता है, उसे एक बार नहीं, बार बार मौत का शिकार बनना पड़ता है।

(१२)

किसी को अधिकार नहीं कि वह तुम्हारे प्राण रूपी परम धन को लूटे उसी प्रकार तुम्हें भी अधिकार नहीं कि तुम किसी के प्राणों के ग्राहक बनो। सब इस नीति का अनुसरण करोगे तो सभी सुखी रहोगे। इसके विरुद्ध व्यवहार करोगे तो भूतल कत्ल खाना बन जायगा। संसार अशान्ति का घर हो जायगा। हिंसा चाहे पेट पालने के लिए की गई हो, चाहे जिह्वा लालुपता के वशीभूत होकर की गई हो चाहे धर्म के नाम पर की गयी हो हर हालत मे पाप है। और हिंस्य तथा हिंसक दोनों को अशान्ति और व्यथा देने वाली है।

(१७)

मनुष्य मे अधिक शक्ति है तो वह शक्ति दुबलो की सहायता म व्यय हानी चाहिए न कि उन्हे सताने में, उनका गला घोटने म !

(१८)

हमारे जीवन मे अहिंसा का बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा ही हमारा पालन पोषण और रक्षण करती है। सत्य यह है कि अहिंसा जीवन है और हिंसा मौत है। यही कारण है कि धर्म मे अहिंसा को सर्व प्रथम स्थान दिया है। वास्तव में अहिंसा के महत्त्व को देखते हुए उसे यह प्रधान स्थान मिलना ही चाहिए।

(१६)

जसे अपने हित को महत्त्व देते हो, उसी प्रकार दूसरो के हितो को भी महत्त्व दो। यही अहिंसा का सदेश है। इसी मे जगत की शान्ति निहित है। जुल्म और अत्याचार किसी के हक मे अच्छे नही है।

(२०)

अहिंसा जीवन है अमृत है और हिंसा मृत्यु है, जहर है। अहिंसा का त्याग करना जीवन का ही खात्मा करना है।

होती ही नहीं है। वह तो अपनी कायरता को अहिंसा के पर्दे में छिपाने का प्रयास करता है।

(२५)

अपनी हथेली पर धधकता हुआ अंगार लेकर दूसरे पर फेंकने की इच्छा रखने वाला पुरुष मूर्ख है। क्या पता है कि दूसरे पर वह गिरेगा भी या नहीं? मगर जो गिराना चाहता है उसकी हथेली तो जले बिना रहेगी नहीं। इसी प्रकार दूसरों का बुरा सोचने वाला भी मूर्ख है। वह दूसरे का बुरा करने से पहले ही अपना बुरा कर लेता है। दूसरे के अपशकुन के लिए अपनी नाक कटवाना बुद्धिमत्ता का काम नहीं है।

(२६)

अहिंसा के बहिष्कार पर ही विचार कर देखिये। अहिंसा का बहिष्कार करने का मतलब होगा—हिंसा की प्रतिष्ठा करना। तब क्या हिंसा के आधार पर सृष्टि चल सकेगी? गर दूसरे की हत्या की ही फिराक में रहे तो संसार कब तक टिकेगा? आप इस कारण जिंदा हैं कि दूसरों ने आपका घात नहीं कर दिया है। इस प्रकार अहिंसा की बदौलत ही आपकी जिन्दगी है। हिंसा मृत्यु है और अहिंसा जीवन है। मृत्यु के बल पर जो जीवित रहना चाहता है, उसकी बुद्धि की बलिहारी है।

(७)

कई लोग आज भी कहते हैं कि अपने खान-पान और मन आराम के लिए किसी जीव को मारने, काटने में कोई दोष नहीं है! भाइयो! अगर इस नियम को सही मान लिया तो इस भूतल पर खून की नदियाँ बहने लगें! अपनी सुख-सुविधा के लिये सभी को मार डालना चाहेंगे। प्रत्येक सबल निर्बल को मार डालने को तैयार हो जायगा। ऐसी भयानक स्थिति में संसार में क्या शान्ति रह सकेगी? यह जो अमन चैन आज दिखाई देती है यह सब अहिंसा का ही प्रताप है। जिस दिन यह विचार सब साधारण जनता के दिल में घर बना लेगा कि अपने सुख के लिए दूसरे को मारने-काटने में कोई दोष नहीं है उसी दिन यह पृथ्वी नरक के समान बन जायगी। गनीमत यही है कि जगत मात्र में करुणा के कुछ न कुछ अंश विद्यमान रहते ही हैं।

(८)

मैं तो दावा करके कहता हूँ कि मानव जाति की सर्वोच्च संस्कृति का विकास अहिंसा के विकास में ही अन्तर्निहित है। अहिंसा से बढ़कर और कोई संस्कृति नहीं हो सकती और अहिंसा को छोड़ कर तो संस्कृति जैसी वस्तु हो ही नहीं सकता। अतएव जिस व्यक्ति, समाज या राष्ट्र ने अहिंसा की जितनी अधिक साधना की है, उसने अपनी संस्कृति का उतना ही अधिक विकास किया है। अहिंसा संस्कृति की

कसौटी पर आज की दुनिया को जब हम परखने जाते हैं तो निराशा के सिवाय और क्या हाथ आता है ?

(२६)

दया के बिना ससार का त्राण नहीं है। शान्ति की सैकडो योजनाएँ बनाई जाएँ, मगर वे विफल ही होंगी, अगर उनके मूल में दया नही होगी। क्योंकि शान्ति का मूल आधार दया ही है।

(३०)

कीचड को कीचड से धोने का प्रयास मत करो। खून के दाग को खून से धोने का प्रयत्न करना उपहास्पद है। इसी प्रकार हिंसा जनित पाप कर्म के फल से बचने के लिए हिंसा को मत अपनाओ। दया माता की करुणामयी मुद्रा को अपने सामने रख कर ही कुछ करो। दया को बिसार कर काम करोगे तो अच्छा करने चलोगे और बुरा फल पाओगे। बकरा और पाडा जैसे पचेन्द्रिय जीवो की हत्या से किसी का कल्याण होना सभव नही है।

(३१)

अहिंसा के शस्त्र से वैरी का नहीं वैर का सहार किया जाता है और जब वैर का सहार हो जाता है तो वैरी मित्र बन जाता है। हिंसा वैरी का नाश करके वैर को बढाती है। वह वैर की अपरिमित परम्परा को जन्म देती है।

(३२)

जब आप दूसरे का बुरा चाहेंगे और बुरा करेंगे तो आपका भला कम हो सकता है। अतएव अगर अपना भला चाहते हो तो दूसरों का भला चाहो। हराम का माल खाने की इच्छा मत करो। और धर्मादि की सम्पत्ति भी हड़पने की इच्छा न रक्खो। गरीबों का मन मत दुखाओ।

(३३)

कई लोग अपने दुःख का प्रतीकार करने के लिए हिंसा का आश्रय लेते हैं। यदि मेरा लड़का जीवित रह जायगा तो एक पाड़ा मारूँगा अथवा बकरा चढ़ाऊँगा' इस प्रकार की मनौता मनाता है। अपने हाथ से हिंसा करने में ग्लानि होती है तो दूसरे से वह कर करवाता है। किन्तु इस प्रकार एक की जान लेने से दूसरे की जान बच जाती तो सब जीवित रहने का सरल उपाय पाकर कौन जीवित न रह लेता? राजा महाराजा लाखों जीवों की हिंसा करा सकते हैं। मगर इस भूतल पर आज तक कोई सशरीर अमर नहीं रह सका।

(३४)

लोग माताजी को जगत की माता मानते हैं, सब जीव धारियों को उनका पुत्र समझते हैं और फिर भी उनके ही सामने, उन्हीं के निमित्त, बकरा, पाड़ा आदि उनके पुत्रों के प्राण

लेते हैं ? क्या इससे कभी माता प्रसन्न हो सकती है ? क्या कोई भी माता अपने बच्चे का बलिदान चाह सकती है और उससे सन्तुष्ट हो सकती है ? शेरनी जैसी क्रूर समझी जाने वाली माता भी अपनी सन्तान की रक्षा करती है तो क्या सारे संसार की माता उससे भी ज्यादा क्रूर होगी ? वह अपनी सन्तान की रक्षा नहीं चाहेगी ? अवश्य चाहेगी। यही नहीं, अगर वह सच्ची माता है तो अपनी सन्तान का घात करने वाले से बदला लिये बिना नहीं रहेगी।

(३५)

कितने ही अज्ञानी जन पहले की हुई हिंसा के फल से बचने के लिए फिर हिंसा का ही आचरण करते हैं। अर्थात् वे स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए पशु बलि यज्ञ होम आदि का आश्रय लेते हैं किन्तु ऐसा करने वाले लोग गंभीर भूल करते हैं। जैसे खून से भिगा वस्त्र खून से ही साफ नहीं हो सकता, उसी प्रकार हिंसा आदि पापों के आचरण के द्वारा बाँधे हुए कर्म हिंसा आदि से ही दूर नहीं हो सकते। पापों और पाप का आचरण करके शुद्ध नहीं हो सकता। आत्मशुद्धि के लिए पापों का त्याग करने की आवश्यकता है।

(३६)

कोई भी धर्म हिंसा का विधान नहीं करता। 'हिंसा नाम भवद्धर्मो न भूतो न भविष्यति' हिंसा कभी धर्म नहीं हुई और न कभी होगी ही। हिंसा और धर्म में परस्पर विरोध

है। जो हिंसा है वह धर्म नहीं और जो धर्म है वह हिंसा नहीं। यह वैदिक धर्म के प्रतिपादकों की भी घोषणा है। ऐसी हालत में हिंसा करके धर्म की कामना करने वाले लोग क्या दया के पात्र नहीं हैं।

(३७)

मनुष्य भी प्राणी है और पशु पक्षी भी प्राणी हैं मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है इस कारण उसे सब प्राणियों का बड़ा भाई कहा जा सकता है। पशु-पक्षी मनुष्य के छोटे भाई हैं। क्या यह कर्तव्य है कि वह अपने कमजोर भाई के गले पर छुरा चलावे ? नहीं बड़े भाई का काम रक्षण करना है भक्षण करना नहीं।

(३८)

अफसोस है कि जिन क्षत्रियों की वीरता जगत् में विख्यात थी और जो रणभूमि में शस्त्रहीन शत्रु पर भी आक्रमण नहीं करते थे, उन्हीं के वंशज आज बकरों और पाड़ों पर शस्त्र चलाते हुए शर्मिन्दा नहीं होते और फिर भी अपने क्षत्रिय होने का अभिमान करते हैं ? कितना अधःपतन हो गया है ? क्षत्रिय वीर अपनी वीरता को विस्मृत कर बैठे हैं और कायरता के काम करके अपनी बहादुरी जतलाने में संकोच नहीं करते ?

(६९)

अगर मांस मदिरा आदि चीजें अच्छी होती तो मंदिरों में क्यों नहीं चढ़ाई जाती ? ये खराब चीजें हैं, इसी कारण तो इन्हें मंदिरों में नहीं जाने दिया जाता। भाइयो ? जब यह चीज मन्दिरों में भी नहीं घुस सकती तो इनका सेवन करने वाला वैकुण्ठ में कैसे घुस सकेगा। थोड़ी देर के लिए वैकुण्ठ की बात जाने दीजिये। यह चीज इतनी अधिक हानिकारक है कि इस शरीर को भी नष्ट कर डालती है। इनका सेवन करने वाले नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित होकर दुःख भोगते हुए मरते हैं। भाइयो ! यह अभक्ष्य चीजें हैं। छोड़ने लायक हैं।

(७०)

जो अंडे खाते हैं, बकरे जैसे सीधे-साधे भोले प्राणियों को भी मांस खा जाते हैं, बकरे को पेट में डाल लेते हैं, मछली को हजम कर जाते हैं और खा-पीकर ठाकुरजी के सामने पड़ कर साष्टांग नमस्कार करते हैं। वे क्या वैकुण्ठ पा सकते हैं ? क्या ठाकुरजी ऐसे हिंसकों, निर्दयों और जिह्वालोलुपों को स्वर्ग में भेज देंगे ? अगर ऐसे लोग स्वर्ग में चले जावें तो नरक में कौन जाएगा, फिर तो नरक का द्वार ही बन्द हो जायगा।

(८१)

जैसे तुम मरना नहीं चाहते, जिन्दा रहना चाहते हो, उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना पसन्द करते हैं। किसी का भी मरना पसन्द नहीं है, अगर तुम्हें पकड़ कर कोई पुजारी किसी देव के आगे बलि चढ़ाना चाहे तो तुम उस पुजारी को क्या कहोगे ? उस देवी के विषय में भी क्या सोचोगे ? बस, यही बात उन पशुओं के विषय में भी सोचो। फर्क है तो इतना ही कि तुम व्यक्त वाणी में बोल सकते हो और पशु नहीं बोल सकते।

(८२)

भाइयो ! हिंसा के फल अत्यधिक कटुक हैं। वर्तमान में भी और भविष्य में भी हिंसा दुःख संताप और अशान्ति उत्पन्न करती है। ऐसा समझ कर हिंसा से बचो और जीवों की दया करो। व्यक्ति, समाज और देश अहिंसा से ही शान्ति और सुख का अनुभव कर सकता है। इसलिए सुख चाहते हो तो कटुक कांचरे की बेल मत बोओ। हिंसा जहरीली बेल है। और उस बेल में फल जहरीले ही लगते हैं।

(८३)

एक ओर जब सभी दया को धर्म कहते हैं तो फिर यह बकरा ईद कहाँ से आ गई ? और दशहरे व तथा नवरात्रि के अवसर पर बकरे और पाड़े मारने का सिद्धान्त कहाँ से निकल पड़ा ? यह सब जिह्वालोलुप लोगों की ईजाद है।

आपको इस चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। सबको निश्चय कर लेना चाहिए कि दया धर्म है तो हिंसा धर्म नहीं हो सकता। जो लोग धर्म के नाम पर हिंसा करते हैं और उस हिंसा को अहिंसा का जामा पहनाना चाहते हैं और लोगों को यही बात समझाना चाहते हैं वे स्वयं संसार में डूबेंगे और उनकी बात मानने वाले भी डूबेंगे। दया-माता ही उद्धार करने वाली है।

(४७)

जो लोग मुर्दे को तो कब्र में दफनाते हैं और बकरे को मार कर उदर में दफनाते हैं उनका जीवन कभी पवित्र नहीं बन सकता।

(४८)

हाय! मनुष्य जिस पेट को चार रोटियों से भर सकता है, उसी पेट के लिए पंचेन्द्रिय जीवों का घात करने में संकोच नहीं करता! वह मांस भक्षण करके जंगली जानवरों की कोटि में चला जाता है। अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए दूसरे प्राणी के जीवन को लूट लेना कितना भारी अत्याचार है!

(४९)

अगर किसी ने चारों वेद पढ़ लिए हैं, विविध शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लिया है और ऊँचे दर्जे की विद्वत्ता प्राप्त कर ली है, मगर उस ज्ञान को आचरण में परिणत नहीं किया,

चमड़े के बिना तुम्हारा कौन सा काम अटकता है ? चमड़े का बेग न रक्खा तो क्या तुम्हारा काम नहीं चलेगा ? घड़ी का पट्टा किसी धातु का लगा लाओगे तो क्या तुम्हारी शान किरकिरी हो जायगी अत्यन्त मुलायम जूता न पहनोगे तो क्या बिगड जायगा ? लाखों आदमी इन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते तो क्या उनका कोई काम अटक जाता है ? फिर तुम क्यों इस घोर हिंसा के जिम्मेदार बनते हो।

(५०)

जो ज्ञान प्राप्त करके भी जीव हिंसा का त्याग नहीं करते, उनका ज्ञान निरर्थक है, उसकी कोई सफलता नहीं है। कोई मनुष्य औषध का ज्ञाता है, मगर रोग होने पर औषध का सेवन नहीं करता तो उसका ज्ञान किस काम का ?

(५१)

मनुष्य के लिये यह कितनी लज्जोत्पादक बात है ? समस्त जीव जाति में मनुष्य का विकासस्तर सबसे ऊँचा है और वह सर्वोत्कृष्ट प्राणी होने का दावा करता है। मगर उसके विकास का क्या यही परिणाम होना चाहिए कि वह अपने ही सर्वनाश पर उतारू हो जाय ?

(५२)

जगत मे भांति भांति के जीव-जन्तु है। उन सब में मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है। उसे सबसे अधिक समझदार होना चाहिए। अन्य प्राणियों का रक्षक बनना चाहिए ऐसा करने में ही मनुष्य की बुद्धिमता और विवेक की विशिष्टता है।

(५३)

दूसरों की शान्ति मे ही तुम्हारी शान्ति है। अगर तुम्हारे देशवासी तुम्हारे पडोसी सुखी होगें तो तुम भी सुखी रह सकोगे। अगर तुम्हारे चारो ओर अशान्ति की ज्वालाएँ भभक रही होगी तो तुम्हे भी शान्ति नसीब नही हो सकती। इस प्रकार अपनी निज की शान्ति के लिए भी दूसरो को शान्ति पहुचाने की आवश्यकता है। इन बातो को कभी मत भूलना कि दूसरों को अशान्त रखकर कोई शान्ति नही पा सकता।

(५४)

स्वार्थ मे अन्ध मत बनो। गरीबो को अधिक गरीब बना कर अपनी अमीरी बढ़ाने के तरीके छोडदो। मत समझो कि हमारा पेट भरा है तो दुनिया का पेट भरा है। उनकी असली स्थिति पर विचार करो। हृदय मे दया की भावना रक्खो। गरीबो की कुटिया में जाकर देखो, उन्हे छाती से लगाओ और उनके अभावो को दूर करो। ऐसा करने में गरीबो का ही नही तुम्हारा भी हित है।

कई लोग कहा करते हैं कि अगर हम साँप, बिच्छू शेर बाघ आदि विषैले और हिंसक जीवों को मार डालें तो क्या हर्ज है? वे दूसरे जीवों को मारते हैं अतएव उन्हें मार देने से हिंसा रुक जायगी। परन्तु यह विचारधारा अत्यन्त भ्रमपूर्ण है और उलटी है। उन लोगों से पूछना चाहिए कि दूसरे प्राणियों को मार डालने के कारण अगर सिंह आदि मार डालने योग्य हैं तो सिंहादि को मार डालने के कारण मनुष्य भी मार डालने योग्य क्या नहीं साबित हो जायगा? इस प्रश्न का वे क्या उत्तर देंगे?

(४६)

भाइयो! इस तरह हिंसा पर उतारू हो जाने से अनवस्था हो जायगी। चूहों को मार डालने के कारण बिल्ला मार डालने योग्य होगा, बिल्ला को मारने के कारण कुत्ता मार डालने लायक साबित होगा, कुत्ते को मार डालने से भेड़िया मार डालने योग्य सिद्ध होगा और भेड़िया को भी मारने के कारण सिंह मार देने योग्य हो जायगा। सिंह को मार डालने की वजह से मनुष्य हिंसा का पात्र बन जायगा। मतलब यह है कि अगर आपने हिंसा को योग्य मानना शुरू कर दिया तो कहीं ठहरने का ठिकाना ही नहीं रह जायगा।

(५७)

भाइयो! जो किसी से उधार ले आएगा, उससे लेने के लिए भी वह आएगा। इसी प्रकार तुम किसी के प्राण लोगे

तो यह भी अवसर मिलने पर तुम्हारे प्राण लेगा। अगर तुम किसी के प्राण नहीं लोगे तो तुमसे कोई बदला लेने नहीं आएगा। किसी भी प्रकार का बदला न चुकाना पड़े ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाना ही मोक्ष कहलाता है। बदला देने और लेने के लिए जन्म लेना पड़ता है। मोक्ष में ऐसा कोई झगड़ा नहीं रहता। मोक्ष में पूर्ण निराकुलता है।

(५८)

आज अगर कोई व्यक्ति बुरा है तो उसे सदा के लिए बुरा समझ लेना उचित नहीं है। पापी के पाप को भले घृणा की दृष्टि से देखा जाय, मगर पापी पर घृणा नहीं करनी चाहिए। कौन कह सकता है कि ऊपर से पापी प्रतीत होने वाले की अन्तरात्मा कितनी ऊँची और सरल है। प्रभव चोर इसका उदाहरण है।

(५९)

संसार के भोगोपभोगों का त्याग न कर सको तो उनमें एकान्त लिप्त भी मत बनो। दया के मार्ग पर चलो। दया को ही अपने प्रत्येक कार्य की कसौटी बना कर व्यवहार करो। तुम्हारे जिस कार्य से दया का विरोध होता हो, उसे धर्म मत समझो। भगवती दया के चरणों में अपना सर्वस्व बलिदान करो। यह पावन बलिदान आपके सौभाग्य के अक्षय भंडार का मंगलमय द्वार खोल देगा। तब आपको मालूम हो जायगा कि यह सौदा घाटे का सौदा नहीं है।

(६०)

भाइयो ! जो जैसा करेगा वैसा ही पायगा। जैसे बीज बोयगा, वैसे फल चखने को मिलेंगे। दया किये बिना कुछ भी मिलने को नही है। अतएव प्राणियो पर दया करना अपने पर दया करना है। अतएव अपनी भलाई के लिए, अपने कल्याण के लिए प्राणियो पर दया करो।

(६१)

भाइयो ! किसी की रोजी पर लात मारना अच्छा नही है। यह बडा घोर और अधम कृत्य है। आजीविका ग्यारहवाँ प्राण गिना जाता है, क्योकि आजीविका के अभाव में दसो प्राण खतरे में पड जाते है।

(६२)

कोई आदमी रंग-रूप मे सुन्दर हो-छैल छबील हो, पढा लिखा हो चलता पुर्जा हो मगर उसके दिल में दया नही है तो जानवर का और उसका जन्म बराबर ही है।

(६३)

जो शराबी को शराब पीने से रोक रहा है वह शराबी का भला चाहता है। ऐसी स्थिति में वह हिंसा के पाप का भागी नही हो सकता। कोई अनजान बालक जहर की शीशी उठा कर पीने को उद्यत हुआ है और एक समझदार आदमी उसे पीने से रोक देता है तो वह पाप नही कर रहा है। इसी

प्रकार साधु गण झूठ बोलने वाले, चोरी करने वाले और व्यभिचार करने वाले को उपदेश देकर रोकते है, तो इसमें हिंसा मानना उचित नहीं है।

(६४)

दया-माता ही वास्तव में संसार के समस्त प्राणियों की माता है क्योंकि दया के प्रताप से ही उनकी रक्षा हो रही है उनका जीवन सुरक्षित बना हुआ है। जन्म देने वाली माता के हृदय में भी दया होने के कारण वह अपनी सन्तान का पालन पोषण करती है। अगर मानुषी माता में से दया निकल जाय तो मानव-शिशु की क्या हालत हो जाय ? इस बात पर गहरा विचार करने से दया-माता की महिमा जल्दी समझ में आ जायगी और यह भी समझ में आ जायगा कि वास्तव में दया ही प्राणी मात्र की असली माता है।

(६५)

दया माता का स्मरण करने से सभी कष्टों का निवारण हो जाता है। दूसरे जीवों को सुख पहुंचाओगे तो स्वयं सुख पाओगे और यदि दूसरों को पीड़ा दोगे तो स्वयं पीड़ा के पात्र बनोगे। यह दया-माता का निर्णय है और तीन काल तथा तीन लोक में, कभी नहीं बदल सकता।

(६६)

दया धर्म ही सच्चा धर्म है और दया बिना कोई भी धर्म, धर्म नहीं कहला सकता।

-: सत्य :-

(१)

संसार में जो सत्य है, वही आत्मा है। सत्य और आत्मा एक ही है। सत उसे कहते हैं जिसका कभी नाश नहीं होता। अतएव आत्मा सत्य है और सत्य आत्मा है।

(२)

सत्य के बीज से, अन्तःकरण के प्रदेश में एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति का उदय होता है जिसे पाकर मनुष्य अजय और अप्रतिहत हो जाता है। सत्य के प्रबल प्रताप से इसी लोक में परम मंगल की प्राप्ति होती है।

(३)

संसार के सभी धर्म शास्त्रों में सत्य का ऊँचा स्थान दिया गया है। भिन्न-भिन्न धर्म और-और बातों में भले मतभेद रखते हैं, किन्तु सत्य के विषय में किसी का मतभेद नहीं है। यह सत्य की सब से बड़ी महत्ता और विजय है।

(४)

सत्य के अभाव में कोई भी धर्म नहीं टिक सकता। अन्यान्य धर्म अगर वृक्ष डाली टहनी और पत्ते हैं तो सत्य

को उस सब का मूल मानना होगा । जैसे मूल के उखड़ जाने पर वृक्ष धराशायी हो जाता है उसी प्रकार सत्य के अभाव में सभी धर्मों का अभाव हो जाता है ।

(५)

झूठ बोलने वाला एक बार झूठ बोल कर अपना काम बनाने का प्रयत्न तो अवश्य करता है परन्तु उसके हृदय में खटका बना रहता है । वह अपने असत्य को छिपाने के लिए जाल रचता है और डरता रहता है कि कहीं मेरी पोल न खुल जाय ? उसे एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ गढ़ने पड़ते हैं । उसकी आत्मा गिरती है । वह सदैव चपल रहता है, सशंक रहता है और पाप की पाताल नगरी में गिरा रहता है ।

(६)

असत्य अविश्वास का मूल कारण है । जिसे लोग असत्य वादी समझ लेते उसका विश्वास नहीं करते । उसकी सच्ची बात भी झूठी समझी जाती है । असत्य सारी वासनाओं का घर है और समृद्धि में रुकावट डालने वाला है ।

(७)

भाइयो ! असत्य दोषारोपण करना बड़ा ही भयानक पाप है । जिसको झूठा कलंक लगाया जाता है, विचार करो कि उसे कितनी मानसिक व्यथा होती होगी ? प्राण लेने वाला शत्रु एकदम प्राण ले लेता है परन्तु कलंक लगाने वाला, जिन्दे

कलंक लगाता है उसे आजीवन पीडा पहुंचाता है। यह कोई साधारण पाप नही है।

(८)

नाम रखने का उद्देश्य किसी के गुणों को प्रकट करना नही है, वरन् व्यवहार में, पहचान में सुविधा पैदा करना है। अतएव दुबले पतले अधमरे आदमी के लिए नाहरसिंह शब्द नाम के अनुसार शब्द प्रयोग करने से असत्य का दोष नही लगता है क्यो कि यह कथन नाम सत्य है।

(९)

शतरंज के मोहरा मे राजा, वजीर, हाथी, ऊंट, घोडा और प्यादो की स्थापना कर ली जाती है। उन मोहरो को राजा, वजीर आदि शब्दों से कहते हं। ऐसा कहना दूषित नही है, क्यो कि वह स्थापना सत्य है।

(१०)

किसी ने प्रश्न किया—समुद्र कैसा है ? उत्तर दिया गया—पानी से भरे हुए कटोरा जैसा। यह कथन उपमासत्य है।

(११)

जसे दो और दो चार होते ह यह ध्रुव सत्य था, है और रहेगा, उसी प्रकार तीर्थंकरो ने जो मार्ग बतलाया है वह भी ध्रुव सत्य है।

(१२)

लोगो का यह भ्रम मात्र है कि असत्य का सेवन करने से किसी प्रकार का लाभ हो सकता है। युधिष्ठिर अपने सत्य पर आरूढ रह तो क्या महाभारत में उन्हे विजय प्राप्त नही हुई ? अवश्य हुई।

(१३)

सत्य सदव दवा नहीं रहता। वह एक न एक दिन अवश्य उभरता है। कोई भी मेघ सदा के लिए सूय को नही छिपा सकता। घना से घना कोहरा भी आखिर फटता है और सूय अपने असली रूप में चमकने लगता ह , सत्य भी ऐसा ही ह। वह कभी न कभी प्रकाश में आये बिना नही रहता।

(१४)

हिंसाकारी वचन सत्य की कोटि में नही हैं।

(१५)

थोड समय के लिए भी जिसने असत्य या अब्रह्मचय का सेवन किया, उसने अपना जीवन मिट्टी मे मिला लिया। क्या एक बार जहर खाने वाला मरता नही है ? अवश्य मरता है। इसी प्रकार एक बार सत्य का परित्याग करने वाला भी अपना धर्म गँवा देता है।

से नहीं होता है। कई लोग ऊँची जाति में उत्पन्न होकर भी चोर और बदमाश हो सकते हैं और कई नीची समझे जाने वाली कौम में जन्म लेकर भी प्रामाणिकता और नीति के साथ अपना निवाह करते हैं।

(३)

न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि वह छान बीन करके सच्चा न्याय दे-दूध का दूध पानी का पानी कर दे। इसके विपरीत अगर वह किसी के लिहाज में आकर किसी के दबाव में पड़कर लोभ लालच में फसकर या रिश्वत लेकर अन्याय करता है, सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा ठहराता है तो वह चोर है वह अपने कर्त्तव्य का चोर है, धर्म का चोर है, सरकार का चोर है और प्रजा का चोर है। इसी प्रकार कोई दूसरा कर्मचारी भी अगर अपने वास्तविक कर्त्तव्य से गिरता है तो वह चोरी के अंधे कुएँ में गिरता है।

(४)

चोरी करके कमाया हुआ पैसा मोरी में ही जाने वाला है। उससे आत्मा का भी हनन होता है। चोरी करने वाला व्यापारी अन्त तक अपनी साख कायम नहीं रख सकता। एक न एक दिन उसकी साख खत्म हो जाती है और व्यापारी की साख उठ जाना एक प्रकार से व्यापार उठ जाना है।

(४)

कामभोग विष से अधिक विषम हैं। विष की बात की जाय विष को हाथ में लिया जाय आंखों से देखा जाय या विष संबंधी बात कानों से सुनी जाय तो विष हानि नहीं पहुँचाता, किन्तु कामभोगों का विष इतना तीव्र होता है कि उनकी बात कहने सुनने से, स्मरण करने और देखने से भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। फिर और-और विषों का प्रभाव तो अधिक से अधिक वर्तमान जीवन को ही प्रभावित करता है मगर भोगों का विष जन्म जन्मान्तर तक आत्मा को प्रभावित करता है।

(५)

जब दिव्य कामभोग भी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकते तो फिर साधारण मानुषिक कामभोग क्या तृप्ति कर सकेंगे? भोगों की अभिलाषा भोग भोगने से उसी प्रकार बढ़ती जाती है जिस प्रकार ईंधन झोंकने से आग बढ़ती ही चली जाती है। इन भोगों के अन्त में दुःख के सिवाय और क्या पल्ले पड़ता है? तो क्या रक्खा है इन भोगों में! संसार के सभी पौद्गलिक पदार्थ आत्मा के लिए हितकारी नहीं हैं। थोड़े दिनों रह कर वे आत्मा को मूढ़ बना कर दूर हो जाते हैं।

(६)

ब्रह्मचर्य के अभाव में मूल भूत प्राण शक्ति का ह्रास हो जाता है। तो बाहरी उपचार क्या काम आएँगे? दीपक में

तल ही नहीं होगा तो लाख प्रयत्न करो, वह प्रदीप्त नहीं होगा। इसी प्रकार शरीर में वीर्यशक्ति नहीं है तो कोई भी औषध रसायन, भस्म प्राप्ति काम नहीं आ सकती इसके विपरीत यदि आपने अपने वीर्य की रक्षा की है तो आपको स्वतः नीरोगता प्राप्त होगी आपका जीवन आनन्दमय होगा।

(७)

कामवासना आग है। इस आग की विशेषता यह है कि इसमें जल कर भी लोग जलन का अनुभव नहीं करते, बल्कि शान्ति समझते हैं। यह आग सबसे पहले प्राणी के विवेक को ही नष्ट करता है। और जब उसका विवेक नष्ट हो जाता है तो फिर उसे हित अहित का भान ही नहीं रहता।

(८)

जिसके हृदय में काम-वासना उत्पन्न होती है वह पुरुष आँख रहते भी अन्धा और कान होते हुए भी बहिरा हो जाता है। उसे हिताहित का भान नहीं रहता।

(६५)

मनुष्य के मन में जब दुर्वासना उत्पन्न होती है तो बिगड़ते जरा भी देरी नहीं लगती। फिर वासना मनुष्य को अंधा कर देता है। उचित-अनुचित क्या है, कर्तव्य अकर्तव्य क्या है इत्यादि विचार ऐसे मनुष्य से दूर हो जाते हैं। कई राजा दासियों के भी दास बन जाते हैं और कई व्यक्ति

दासों की दासियाँ बन जाती है। वास्तव में यह काम विकार बड़ा ही अनर्थकारी है।

(९)

उल्लू दिन में नहीं देखता और कौवा रात्रि में नहीं देख सकता, किन्तु कामान्ध पुरुष उल्लू और कौवा से भी गया बीता होता है। उसे न रात को दिखाई देता है न दिन को दिखाई देता है। वह रात-दिन अंधा ही बना रहता है।

(१०)

कामवासना के कारण जिसका विवेक विलुप्त हो जाता है, वह विनय शील, सन्तोष, भद्रता, लज्जाशीलता, कुलीनता आदि सभी को त्याग कर निलज्जता उद्दण्डता आदि बुराइयों का शिकार हो जाता है। अपने पुरखाओं की कीर्ति को कलंकित करने में संकोच नहीं करता।

(११)

जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा नहीं समझी और इस कारण अपने वीर्य का दुरुपयोग किया, समझ लो उसने अपने हाथों से अपने सिर पर कुल्हाड़ा चला लिया। उसने अपने जीवन को भ्रष्ट और नष्ट कर डाला। वह अपनी आत्मा का भयानक शत्रु है। अपने देश और समाज को भी वह हानि पहुँचा रहा है। वह निर्वीर्य पुरुष निकम्मा है। वह जीता है तो भी मृतक के ही समान है।

(१२)

क्या आप उस मूर्ख मनुष्य को विवेकवान् समझेंगे जो बहुमूल्य इत्र को गटरों में डाल देना चाहता है ? मनुष्य जन्म और ब्रह्मचर्य अनमोल रत्न हैं। उन्हें यों लुटा देना मूर्खता की पराकाष्ठा है।

(१३)

वीर्य का नाश करना जीवन का नाश करना है। और वीर्य की रक्षा करना जीवन की रक्षा करना है।

(१४)

काम-वासना समस्त दुर्गुणों का प्रतीक है और काम को जीत लेना समस्त विकारों को जीत लेने का चिह्न है। जिसने काम को जीत लिया, उसने सभी दोषों को जीत लिया समझिए। वास्तव में काम को जीतना बड़ा ही कठिन कार्य है।

(१५)

धर्म की आराधना की पहली शर्त विषय-वासना को जीतना है और विषय वासना में काम वासना सबसे जबरदस्त है। इसे जीते बिना चित्त में निराकुलता नहीं उत्पन्न हो सकती। अतएव जिसे अपना जीवन सफल बनाना है, अपना भविष्य कल्याण-पूर्ण बनाना है, जिसे शान्ति की कामना है और जो असीम सुख का अभिलाषी है, उसे कामवासना पर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए।

दासो की दासिया बन जाती है। वास्तव में यह काम विकार बड़ा ही अनर्थकारी है।

(९)

उल्लू दिन में नही देखता और कौवा रात्रि में नही देख सकता किन्तु कामान्ध पुरुष उल्लू और कौवा से भी गया बीता होता है। उसे न रात का दिखाई देता है न दिन का दिखाई देता है। वह रात-दिन अंधा ही बना रहता है।

(१०)

कामवासना के कारण जिसका विवेक विलुप्त हो जाता है, वह विनय, शील, सन्तोष भद्रता, लज्जाशीलता, कुलीनता आदि सभी को त्याग कर निलज्जता, उद्दण्डता आदि बुराइयो का शिकार हो जाता है। अपने पुरखाओ की कीर्ति को कलंकित करने मे सकोच नही करता।

(११)

जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा नहीं समझी और इस कारण अपने वीर्य का दुरुपयोग किया, समझ लो उसने अपने हाथो से अपने सिर पर कुल्हाडा चला लिया। उसने अपने जीवन को भ्रष्ट और नष्ट कर डाला। वह अपनी आत्मा का भयानक शत्रु है। अपने देश और समाज को भी वह हानि पहुँचा रहा है। वह निर्वीर्य पुरुष निकम्मा है। वह जीता है तो भी मृतक के ही समान है।

(२०)

कोई कह सकता है कि स्त्रियों के विषय में बातचीत करने में क्या रक्खा है ? बातें करने से कम ब्रह्मचर्य बिगड़ जायगा ? परन्तु ऐसा बात नहीं है। इमली या नींबू का नाम लेते ही मुह में पानी भर आता है। इसी प्रकार स्त्रिया संबंधी बातचीत न करने से मन ठिकाने नही रहता है।

(२१)

ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंगोपांगों का अवलोकन न करे। कोई कह सकता है कि विकार तो चित्त में होता है, आँखों में नहीं। फिर स्त्री के अंगोपांगों को अगर देख भी लिया जाय तो क्या हानि है ? इस शंका का समाधान यह है कि जैसे सूर्य की तरफ बार-बार देखने से आँखों की शक्ति का नाश होता है, उसी प्रकार स्त्रियों के अंगोपांगों को देखने से ब्रह्मचारी पुरुष के ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।

(२२)

जैसे आग के स्पर्श से पाँच हजार का लाख खाक हो गया लाख खराब हो गया—उसकी कोई कीमत नहीं रही, इसी प्रकार स्त्री के स्पर्श से संयमी भी खराब हो जाएँगे। आपके ब्रह्मचर्य का क्या मूल्य रह जायगा ?

(१६)

नारी घी के घड़े के समान है और पुरुष तप्त अंगार के समान है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह घृत और आग को एक जगह न रक्खे।

(१७)

जैसे गेहूँ के आटे में भूरा कोला रखने से उसका बचाव नहीं होता अथवा चावलों के पास कच्चा नारियल रख देने से उसमें कीड़े पड़ जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष अगर एक आसन पर बैठें तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

(१८)

पति-पत्नी के शब्द या हँसी-मजाक की बातें सुनने से मन में विकार उत्पन्न होने की पूरी संभावना रहती है। जैसे मेघ की गर्जना सुनने से मोर बोलने लगता है, उसी प्रकार काम-विकार संबंधी बातें सुनने से विकार जागृत होता है।

(१९)

जो स्त्री आदि के साथ एक मकान में रहता है अथवा स्त्रियों की चर्चा वार्ता करता है, उसका ब्रह्मचर्य बिगड़ जाने की पद पद पर सम्भावना बनी रहती है। जहाँ ऐसी बात हो समझना चाहिये कि वहाँ खाली म्यान है, तलवार नहीं है। पुरुष के लिए स्त्री का संसर्ग और स्त्री के लिए पुरुष का सामीप्य सिवाय हानि के और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता।

(७८ ख)

ब्रह्मचर्य की साधना का संबंध जैसे आंख और कान के साथ है उसी प्रकार जीभ के साथ भी है। आंखों और कानों पर कितना ही नियंत्रण क्यों न रक्खा जाय, अगर जीभ पर नियंत्रण न किया तो साधना किसी भी समय मिट्टी में मिल सकती है। पौष्टिक मादक और उत्तेजक भोजन करने वाला ब्रह्मचर्य की आराधना नहीं कर सकता।

(७)

ब्रह्मचारी को रूखा-सूखा भोजन भी परिमाण से अधिक नहीं खाना चाहिए। सेर की हँडिया में सवा सेर भर दिया जाय तो फूटे बिना नहीं रहेगी।

(८)

यदि किसी का मन सबल नहीं है तो वह वर्ष में एक दिन छोड़ कर ब्रह्मचर्य पाले। यह भी नहीं बनता तो महीने में एक दिन अपवाद रख कर ब्रह्मचर्य का पालन करो। अगर इतना भी न हो सके तो कफन सिरहाने रख कर सोओ। शरीर का राजा वीर्य है। अगर राजा बिगड़ गया या नष्ट हो गया तो प्रजा का पता लगाना ही कठिन है। शरीर का राजा बिगड़ जाता है तो फिर जल्दी ही लक्कड़ इकट्ठे करने पड़ते हैं।

(२३)

जैसे व्यापारी जहाज पर सवार होकर व्यापार के निमित्त समुद्र के परले पार जाता है उसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य रूपी जहाज में बैठेगा वह संसार रूपी समुद्र के परले पार जायेगा।

(२४)

कामभोग शल्य के समान हैं। जैसे शरीर के भीतर चुभा हुआ शूल मार्मिक वेदना पहुंचाता है, उसी प्रकार यह कामभोग भी आत्मा को गहरी वेदना पहुंचाने वाले हैं।

(२५)

अगर माता पिता ब्रह्मचर्य का ध्यान रखें तो बचपन में बालकों को प्राय दवा की आवश्यकता ही न रहे। उनको भी जल्दी बुढ़ापा नहीं आवे। क्योंकि वीर्य शरीर का राजा है। जिसका राजा ही बिगड़ जाय, उसकी प्रजा कब ठीक रह सकती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बिगड़ जाने पर शरीर भी बिगड़ जाता है। आज ब्रह्मचर्य की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, इसी कारण सन्तति निर्बल, निस्तेज, रुग्ण और अल्पायुष्क होती है।

(२६ अ)

जो लोग बलवर्धक और उन्मादकारी भोजन करते हैं और कभी तपस्या नहीं करते, वे अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर सकते।

है। हम घूस लेनी नहीं है, पैसे लेने नहीं हैं कि किसी की खुशामद करके व्याख्यान दें।

(३२)

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है उसे अपने रहन-सहन और खान पान के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिये। जीवन में उसे सादगी धारण करना चाहिए। बाल जमाना, सुगंधित साबुन लगाना, इत्र लगाना, सुन्दर वस्त्र भूषण धारण करना और भांति भांति का शृंगार करना यह सब कामदेव को निमंत्रण देने की ही तैयारी करना है। अतएव अपने मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। मन को जीते बिना विषय विकार को जीतना कठिन ही नहीं असंभव भी है।

(३३)

काम रूप विकार स्वाभाविक नहीं है। यह आत्मा का सहज गुण नहीं है। पर पदार्थों के संयोग से ही इस विकार की उत्पत्ति होती है। जो विकार आत्मा की अपनी निर्बलता और भूल से उत्पन्न हुआ है उसे आत्मा जीत भी सकती है।

(३४)

जो मनुष्य शान्ति का इच्छुक है, कान्तिमान बनना चाहता है स्मरण शक्ति बढ़ाने की अभिलाषा रखता है बुद्धि की वृद्धि चाहता है, शरीर को रोगों से बचाना चाहता है और

(६)

जो गृहस्थ रूखा-सूखा भोजन करते हैं उनका भी चित्त ठिकाने नहीं रहता, ऐसी स्थिति में अगर साधु प्रतिदिन गरिष्ठ माल-मसाले खाएगा तो उसकी साधुता ठिकाने लगने में क्या कसर रह जाएगी ? किसी आदमी को त्रिदोष की बीमारी हो जाय और फिर उसे मिश्री तथा दूध पिला दिया जाय तो वह नालाम ही बोल जायगा-मर जायगा, इसी प्रकार जो रोज माल खायगा, वह ब्रह्मचर्य से च्युत हो जायगा।

(०)

जैसे पवन का समुद्र में गिरना सम्भव नहीं, उसी प्रकार वाजिक भोजन करने वालों के लिए इंद्रियों का निग्रह करना सम्भव नहीं। इंद्रियों को प्रबल बनाने वाला, उन्माद उत्पन्न करने वाला, उत्तेजक भोजन विषय वासना की ओर प्रेरित करता है। ऐसा भोजन करके काम विजय करना सम्भव नहीं है।

(३१)

स्त्री अगर ब्रह्मचारी पुरुष के लिए विष के समान है तो ब्रह्मचारिणी स्त्री के लिये पुरुष भी विष के ही समान है। स्त्रियों को पुरुषों के सान्निध्य-संसर्ग से बचना चाहिए और ब्रह्मचर्य पालन के लिए पुरुषों को जो नियम बतलाये गये हैं वे स्त्रियों के लिए भी समझना चाहिए। आशय यह है कि पुरुष भी कम मायी नहीं है। हम तो देखते हैं सारे सारे गीत गाते

(२८)

भाइयो! जैसे ब्रह्मचर्य सब व्रतों में उत्तम है उसी प्रकार व्यभिचार सब पापों में बड़ा है। इसके कई कारण हैं। उनमें से एक कारण यह भी है कि और और पापों की तरह यह पाप तत्काल समाप्त नहीं हो जाता किन्तु इसकी परम्परा लम्बी चली जाती है।

— परस्त्री गमन —

(१)

परायी स्त्री को भी जूठन की उपमा दी गई है। अतएव उस पर ललचाने वाले कुलीन जन नहीं हो सकते। और कुत्ते के समान नीच जन ही उसकी अभिलाषा करते हैं। परस्त्री गमन भयानक अपराध और घोर पाप है। अनेक दुःखों का कारण है।

(२)

कहाँ केसर और कहाँ विष्ठा! मगर मक्खी का ऐसा स्वभाव है कि वह केसर के पास नहीं जाती। उसे विष्ठा ही प्यारी लगती है। इसी प्रकार जो स्त्री, अपने विवाहित पति को छोड़ कर परपुरुष के पास जाती है, वह मानो केसर को छोड़कर विष्ठा पर जाने वाली, गन्दगी को पसन्द करने वाली मक्खी के समान है। यह बात पुरुष के लिए भी है। परस्त्री का सेवन करने वाला पुरुष जूठन चाटने वाले कुत्ते के समान गर्हित है।

उत्तम सन्तान चाहता है उसे ब्रह्मचर्य रूप महान् धर्म का आचरण करना चाहिए।

(३५)

ब्रह्मचर्य से तन और मन बलवान बनता है। ब्रह्मचर्य से आत्मा निर्मल होती है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ब्रह्मचर्य पर विद्या बुद्धि प्रतिभा, तेजस्विता स्वस्थता, दीर्घायु और सुख प्रवाह करता आता है।

(३६)

ब्रह्मचर्य का पालन करने से अनेक भयंकर बीमारियाँ जैसे क्षय, तपेदिक आदि भी दूर हो जाती हैं और कामासक्ति की अधिकता से अनेक प्राणहारी रोगों का उद्भव होता है। सुजाक, गर्मी और प्रमेह आदि गंदी लज्जा जनक, जान लेने वाली और जिन्दगी को भार भूत एवं दुःखमय बनाने वाली बीमारियाँ वीर्य के अनुचित विनाश से उत्पन्न होती हैं।

(३७)

स्त्री या पुरुष, जो व्यभिचारी होता है प्रायः क्षय जैसे भयंकर राज-रोगों के शिकार बनते हैं। राजयक्ष्मा से बचने का सर्वोत्तम उपाय शरीर के राजा की वीर्य की-रक्षा करना ही है। यदि राजा नहीं बचा तो बताओ प्रजा की क्या दुर्दशा होगी ?

(६)

जो परस्त्री लम्पट हैं और वेश्यागामी हैं वे भी रावण को पत्थर मारने दौड़ते हैं मगर यह नहीं सोचते कि जिस दोष के कारण रावण की यह दशा हुई वही दोष मुझ में और भी ज्यादा है तो मेरी क्या दशा होगी।

(७)

रावण का पुतला जलाने वाले! तू जरा अपनी तरफ तो देख! तू स्वयं रावण का बाप बना बैठा है और रावण को जलाने चला है! अरे पहले तू अपनी दुर्वासनाओं को जला जो तुझे रावण से भी गया-बीता बना रही है, पतित कर रही है और तब रावण के विषय में विचार करना!

(८)

सचाई सूर्य के समान है जो मिथ्या के मेघों में सदा के लिए छिपने की नहीं है। वह तो अन्ततः प्रकट होने की ही है। सीता के सतीत्व पर कलंक लगाया गया था किन्तु क्या वह कलंक अंत तक स्थिर रह सका? नहीं। वह आग को पानी बना कर प्रकट हो गया और उस सती को कलंक लगाने वाले ही कलंकित हुए।

(९)

बदचलन औरत को राक्षसी की उपमा दी गई है। उसके दोनों स्तन दो फाड़े हैं। जो ऐसी स्त्रियों के फन्दे में फँस

(३)

रावण क्या छोटा राजा था? सीता को ले गया था? नहीं वह भी छिप कर अकेले में ही ले गया था। फिर भी बात छिपी नहीं रही। इसी प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा पाप छिपा नहीं रहेगा। वह एक दिन अवश्य प्रकट होगा और तुम्हें निन्दा एवं घृणा का पात्र बना देगा।

(४)

रावण कितना शक्तिशाली और नामी वीर पुरुष था। परस्त्री की स्वीकृति के बिना उसका भजन न करने की उसकी प्रतिज्ञा थी। फिर भी परस्त्री का अपहरण करने मात्र से उसे कितनी हानि उठानी पड़ी? उसे राज्य से हाथ धोने पड़े, प्राणों का परित्याग करना पड़ा, कुल का क्षय हो गया! जब रावण जैसे शक्तिशाली पुरुष की भी यह दुर्दशा हो सकती है तो साधारण मनुष्य का तो कहना ही क्या है?

(५)

और रावण का विनाश क्यों हुआ? उसने परस्त्री गमन नहीं किया, सिर्फ परस्त्रीगमन करना चाहा था। अब आप विचार करें कि जिस पाप का सेवन करने की इच्छा मात्र में रावण जैसे महान् सम्राट् को अपने राज्य से ही नहीं अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा, उस पाप के सेवन से साधारण मनुष्य की क्या हालत न होगी?

चार पातकी है। वह अपनी ही प्रतिष्ठा को कलंकित नहीं करता, वरन् अपने कुल और परिवार को भी कलंक लगाता है। वह अपने पुरखाओं के निर्मल यश को भी कलंकित करता है। वह छोटों या बड़ों सब की नजरों में गिर जाता है। सभी उससे घृणा करते हैं। उसके परिवार के लोग भी उसका मुख देखना पसंद नहीं करते। वह जहाँ कहीं जाता है, अपमान और तिरस्कार का पात्र बनता है।

जाता है, उसकी बडी दुर्दशा हो जाती है। आरंभ में वे अपनी मोहक चेष्टाओ द्वारा पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करती है और जब पुरुष उनके चंगुल मे फँस जाता है तो फिर उससे गुलाम जैसा व्यवहार करती है। ऐसे पुरुष के लिए जीवन भारभूत हो जाता है।

(१०)

वेश्या का अधर क्या है? लुच्चो और गुंडो के थूकने का ठीकरा है। जो अपनी प्रतिष्ठा को समझता है वह भूल कर भी इस गलत रास्ते पर नही जाता।

(११)

जिन लोगो को वेश्यागमन की गंदी आदत हो जाती है, वे गर्मी, सुजाक आदि भीषण व्याधियो के शिकार हो जाते है और गल गल करके मरते है। वे जीवन भर भयंकर यातनाएँ भुगतते है और दूसरे लोग उनके प्रति सहानुभूति के दो शब्द तक नही कहते। परलोक मे जाने पर तपी हुई ताबे की पुतलियो से उन्हे आलिंगन कराया जाता है।

(१२)

परस्त्री की कामना करने वाला, परस्त्री की ओर विकार भरी दृष्टि से देखने वाला परस्त्री को देखकर कुचेष्टाएँ करने वाला और परस्त्री को भ्रष्ट करने वाला पुरुष

होता है, वह संसार सागर में डूब जाता है। अतएव जिसे डूबने की इच्छा न हो, उसे चाहिये कि वह परिग्रह का परित्याग करे।

(५)

निश्चिन्त बनने के लिए निष्परिग्रह बनना चाहिए।

— कषाय —

(१)

ईर्षा, द्वेष, लोभ आदि कषायों से प्रेरित होकर कितनी ही क्रिया क्यों न की जाय, आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। कितना ही लम्बा तिलक लगाओ और मुहपत्ती बांधो, किन्तु आखिर तो कषायों को जीतना ही काम आयगा।

(२)

तुम ईश्वर से मिलना चाहो और झूठ, कपट, लोभ लालच मोह ममता आदि को छोड़ना भी न चाहो, यह नहीं हो सकेगा। दो घोड़ो पर एक साथ सवारी नहीं हो सकती।

(३)

जिसके अन्तःकरण मे कषाय की अग्नि प्रज्वलित होती है, उसका विवेक दग्ध हो जाता है। वह यथार्थ वस्तु स्थिति का विचार नहीं कर सकता। वह अपने दोषों को न देखकर दूसरे के ही दोषों का विचार करता है।

(४)

मोक्ष का बाधक कषाय भाव ही है। दारू का धोवन पीने वाला छठे गुणस्थान में और मधो का धोवन पीने वाला

सातवें गुणस्थान में हो सो बात नहीं है। भले कपड़े पहनने मात्र से भी गुणस्थान नहीं चढ़ता। गुणस्थान चढ़ने के लिए कषाय को जीतने की आवश्यकता है। भुने चने या बार का आटा खाने वाला भी अगर लोलुपता के साथ खाता है तो वह पाप का भागी होता है और यदि आगम का सीरा विरक्त भाव से खाता है तो वह पाप का भागी नहीं होता।

(५)

कषायों की ज्यों–ज्यों उपशान्ति होती है, त्यों–त्यों गुणस्थानों की उच्चता प्राप्त होती है। संसार भर के साहित्य को कण्ठस्थ कर लेने पर भी जिसने अपने कषाय को बिलकुल नहीं जीता वह एक भी गुणस्थान ऊँचा नहीं चढ़ सकता। इसके विपरीत अगर ज्ञान विशेष प्राप्त नहीं हुआ है फिर भी कषाय विजय का गुण प्राप्त हो गया है तो गुणस्थान श्रेणी ऊँची चढ़ जायगी।

(६)

तत्त्वज्ञान के साथ कषाय का उपशम होने से ही [illegible] होता है। कोई कितने व्रत पारणा करे परन्तु कषायों का निग्रह न करे तो वह सच्चा तपस्वी नहीं कहला सकता। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान पा लेने पर भी अगर कोई कषायों को [illegible] कर पाता है तो वह सच्चा तत्त्वज्ञानी नहीं है।

हे मुमुक्षुओ ! जो कोई भी क्रिया करो, उसमें कषाय को जितने का ध्येय प्रधान रूप से रखना। कषाय को न जीत सकोगे तो कितनी ही तपस्या करो कितने ही मैले कपड़ों से रहो, आत्मा को मुक्ति नहीं मिलेगी अतएव कषाय के कचरे को हटाओ।

(८)

तपस्या आदि कोई भी बाह्य क्रिया तभी सार्थक होती है जब वह कषाय विजय में सहायक हो। अतएव जो कुछ भी करो उसमें कषाय विजय ही प्रधान होना चाहिए। तपस्या करो तो शरीर पर से ममता कम करने के लिए कर्मों की निर्जरा करने के लिए और अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने के लिए करो, लोक पूजा प्रतिष्ठा यश आदि के लिए मत करो। ऐसा करोगे तो कष्ट भी उठाओगे और आत्मिक प्रयोजन को भी पूरा नहीं कर पाओगे। बल्कि कषाय भाव में उलटी वृद्धि होगी। मोक्ष और भी दूर चला जायगा।

(९)

कषायों की उपशान्ति ही आत्मा के उत्थान का चिह्न है। ज्ञान उच्च श्रेणी का हो फिर भी अगर कषायों का उपशम न हुआ तो ज्ञान व्यर्थ है। आत्मा की पवित्रता का प्रधान आधार निष्कषायवृत्ति ही है।

(१०)

जैसे मदिरा का असर होने पर प्राणी बेभान हो जाता है उसी प्रकार कषाय का आवेग होने पर भी प्राणी अपने आपको भूल जाता है। उसे भला बुरा भी नहीं सूझता और ऐसे ऐसे काम कर गुजरता है कि उसे सदैव पछताना पड़ता है।

(११)

बोतल में मदिरा भरी है और ऊपर से काग लगा है। उसे लेकर कोई हजार बार गंगाजी में स्नान कराए क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी? क्या वह गंगाजल में धुल कर मदिरा पेय हो गई? इसी प्रकार जिसका अन्तरंग पाप और कषाय से भरा हुआ है वह ऊपर से कितना ही साफ-सुथरा रहे बगुले की तरह झक-सफेद दिखाई दे, किन्तु वास्तव में तो रहेगा, अपावन ही!

(१२)

समझदार आदमी विवेकवान होता है तो मजे में घर अथवा दुकान जाता है किन्तु जो शराब पी लेता और नशे में होता है, वह बीच में कांटों में ही धड़ाम से गिर पड़ता है, इसी प्रकार कषाय और प्रमाद में पड़ कर जीव दुर्गति में जा पड़ता है, वस्तुतः कर्म से ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अतएव मनुष्य का प्रथम और प्रधान कर्तव्य एवं उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह कर्मों को नष्ट करने का प्रयत्न करे।

(१३)

जो जितना कषायों का त्याग करता है, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी वेष में क्यों न रहा हो।

(१४)

जिसने कषायों को मारा उसने जन्म मरण को मारा।

– क्रोध .–

(१)

क्रोधी मनुष्य स्वयं जलता है और दूसरों को भी जलाता है। सब प्रथम स्वयं सन्ताप करता है जलन के कारण व्याकुल होता है फिर दूसरों को संताप पहुंचाने का प्रयत्न करता है। उसके प्रयत्न से दूसरों को दुःख हो या न हो, दूसरे का अहित हो भी सकता है और कभी नहीं भी होता, मगर क्रोधी आप स्वयं अपना अहित अवश्य कर लेता है। अतएव भगवान का आदेश है कि अगर तुम सन्ताप से बचना चाहते हो, जलन तुम्हें प्रिय नहीं है शान्ति पसन्द है तो क्रोध को अपने काबू में रक्खो। क्षमा भावना को बढ़ाओ।

( )

क्रोध बहुत बुरा दुर्गुण है। यह अकेला ही दुर्गुण समस्त सद्‌गुणों को नष्ट करने वाला है। यह नरक का द्वार है। जिसने इस दरवाजे में प्रवेश किया, उसे नरक पहुँचते देर नहीं लगती।

(३)

क्रोधी का खून सूख जाता है। उसका शरीर रुग्ण हो जाता है। क्रोधी स्वयं दुःखी होकर घर के सब लोगों को

दुःखी बना देता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है। वह कुछ खाता पीता है उसका रस क्रोध की आग में भस्म हो जाता है।

(४)

भाइयो! क्रोध की आग वह आग है जो पहले अपने आश्रय को ही जलाता है। जिस चित्त में क्रोध की ज्वालाएँ दहकती है, वह चित्त ही पहले पहल जलता है। क्रोध की ज्वालाएँ दूसरे को जलाएं और कदाचित न भी जलाए, पर अपने उत्पत्ति स्थान को तो जला कर राख कर ही डालती है।

(५)

आग भी जलाती है, और क्रोध भी जलाता है किन्तु दोनों से उत्पन्न होने वाली जलन में महान् अन्तर है। आग ऊपर ऊपर से चमड़ा आदि को जलाती है मगर क्रोध अंतरंग को समाप्त करता और जलाता है। क्रोध की अग्नि बड़ी जबर्दस्त होती है।

(६)

क्रोध को चाण्डाल की उपमा दी जाती है। वास्तव में देखा जाय तो असली चाण्डाल क्रोध ही है। जिसके चित्त में क्रोध का वास है वह स्वयं चाण्डाल है।

(७)

क्रोधी मनुष्य जब क्रोध के आवेश में आता है, तो उसमें एक प्रकार का पागलपन आ जाता है। पागल आदमी जैसे अपने हित-अहित का विचार नहीं कर सकता उसी प्रकार क्रोधी भी। यही कारण है कि वह क्रोध की अनर्थ करने में संकोच नहीं करता।

(८)

क्रोध से जो पागल होता है वह सत् असत् का विचार करने में असमर्थ हो जाता है। क्रोध के आवेग में उसकी विचार शक्ति भस्म हो जाती है। वह न बोलने योग्य भाषा बोलता है न करने योग्य काम करता है और न करने योग्य स्मरण करता है। वह क्रोध की आग में स्वयं भी जलता है और दूसरों को भी जलाता है।

(९)

क्रोध से तपस्वी की तपस्या छिन्न भिन्न हो जाती है। जैसे हलुवे में कपूर की धूली दे दी जाय कलाकन्द में संखिया डाल दिया जाय तो बताओ क्या वह खाने योग्य रहेगा प्रकार तप और त्याग में यदि क्रोध का मेल हो जाय तपस्या व्यर्थ हो जाती है।

(१०)

क्रोध समस्त अनर्थ का ही कारण होता है वह देश में, जाति में, समाज में, परिवार में और मित्र मंडली में अशान्ति पैदा कर देता है, फूट डाल देता है और अव्यवस्था उत्पन्न करके उसका विनाश कर डालता है। अतएव शास्त्रों में यही उपदेश दिया गया है कि क्रोध का त्याग करना चाहिए। क्रोध धर्म का, आत्म-कल्याण का विनाशक है, और अत्यन्त भयानक है।

(११)

मनुष्य जब क्रोध में आता है तो भद्दे शब्दों का प्रयोग करता है और फिर उन उन शब्दों के लिए लज्जित होना पड़ता है। बनिया मांस नहीं खाता लेकिन क्रोध में आकर बोलता है कि 'तुझे कच्चा ही खा जाऊँगा'। ऐसी भाषा सभ्य और धार्मिक पुरुषों को कभी नहीं बोलनी चाहिए। कदाचित मन पर काबू न रहा हो और आवेश में ऐसे शब्द निकल गये हों तो प्रायश्चित लेकर शुद्धि कर लेनी चाहिए और जिससे ऐसे शब्द कहे हों उससे क्षमा माग लेनी ... ।

जैसे पागल ... रहता है और न ... है।
प्रकार क्रुद्ध मनुष्य ... आता
क्रोध के कारण

(१३)

जिस प्रकार पानी से तह में जमे हुए कीचड़ को हाथ डालकर हिला दिया जाय तो निर्मल जल भी मैला हो जाता है इसी प्रकार क्रोध के कारण समझदार आदमी भी क्षण भर में मूर्ख बन जाता है।

(१४)

क्रोध के आवेग में मनुष्य अंधा हो जाता है। वह पागलपन की स्थिति में पहुँच जाता है। उसका मस्तिष्क शून्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में ही कोई-कोई आत्मघात तक कर लेता है। अतएव क्रोध बड़ा ही भयंकर शत्रु है।

—: मान :—

(१)

चिउँटी के जब पर आते हैं तो लोग कहते हैं यह पर नहीं मरने की निशानी है, यमराज का नोटिस है। जब किसी आदमी में घमण्ड का भाव अत्यधिक बढ़ गया हो और वह घमण्ड के कारण फूल रहा हो तो समझो कि इसकी मौत इसके सिर पर चक्कर काट रही है।

(२)

अभिमान पाप का मूल है। अभिमान उन्नति और प्रगति के पथ का एक जबरदस्त रोड़ा है। अभिमान मनुष्य को अन्धा बना देता है। जो अभिमान से अन्धा बन जाता है उसे अपने अवगुण और दूसरे के सद्गुण नहीं दिखाई देते। अभिमानी मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है। विनय को नष्ट करने वाला अभिमान ही है। अतएव अपना कल्याण चाहते हो तो अभिमान का त्याग करो   का आदर करो।

(३)

यह अहंकार

मनुष्य को अपने

बड़ा बुद्धिमान कि अभिमान भी मिला। पांच आदमी पूछने लगे कि घमण्ड कर गया। जरा सा गुण आता है तो दुर्गुण भी उसके साथ भगा आता है। किसी का भला आदमी समय कर मुखिया बनाया और वहीं काटने दौड़ पड़ा।

(४)

गधड़ा चिल्लाता है-ढा-भ-ढा-भू अर्थात जो है सो मैं हूँ। मगर कौन उसे बड़प्पन देता है ? इसी प्रकार जो मनुष्य अहंकार में चूर रहता है और अपने सामने किसी का कुछ गिनता ही नहीं है उस सम्यग्बोध की प्राप्ति होना कठिन है।

(५)

अभिमान पतन की ओर ले जाने वाला घोर शत्रु है। वह विनाश का स्रष्टा है। उसके चंगुल से अपनी रक्षा करो अपने आपको बचाओ। निरहंकार वृत्ति अभ्युदय की सीढ़ी है। ज्यों-ज्यों नम्रता धारण करोगे, ऊँचे उठोगे। शास्त्र का कथन है कि नम्रता धारण करने से उच्च गोत्र का बंध होता है और अहंकार करने से नीच गोत्र कर्म बंधता है।

(६)

अभिमानी पुरुष दूसरों के सद्गुणों को भी दुर्गुणों के रूप में देखता है और अपने दुर्गुणों को भी सद्गुण समझता है। फल यह होता है कि वह सद्गुणों से वंचित रहता दुर्गुणों का [illegible]

(७)

अभिमान एक प्रकार की बीमारी है जो समस्त गुणों का हरण और दुर्बल बना देती है। अभिमानी के समस्त गुण, अवगुण बन जाते हैं। वह आदर का नहीं, घृणा का पात्र बनता है। इसके विरुद्ध विनीत पुरुष आदर-सम्मान के योग्य समझा जाता है। अतएव अपने मन में भूलकर भी कभी अभिमान मत आने दो।

(८)

भाइयो! अभिमान मनुष्य का एक प्रबल शत्रु है। जो अभिमानी है वह स्वभावतः अपने राई जितने गुणों को पर्वत के बराबर और दूसरों के पर्वत के बराबर गुणों को राई के बराबर समझता है। उसके ऐसा समझने से दूसरा की कोई हानि नहीं होती, उसीकी हानि होती है क्योंकि उसके सद्गुणों का विकास नहीं हो सकता। वह न विद्या प्राप्त कर पाता है न विनय प्राप्त कर सकता है, और न दूसरे सद्गुण ही पाता है। अभिमानी को लोग हिकारत की निगाह से देखते हैं। उन्नति में जितना बाधक अभिमान है उतना और कोई नहीं। अतएव अभिमान का त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

(९)

वास्तविक दृष्टि से देखोगे तो आपको अवश्य ऐसा जान पड़ेगा कि अहंकार करने योग्य वस्तु ही आपके पास नहीं

है। दुनिया में तुम से बढ़कर सद्‌गुणी पड़े हैं श्रीमन्त हैं बलवान हैं विद्वान हैं क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा स्थान विश्व में अद्वितीय है? कदाचित् ऐसा है तो भी अहंकार के लिए कोई कारण नहीं है। क्योंकि जिस चीज के लिए तुम अहंकार करते हो, वह स्थायी नहीं है और तुम्हारी नहीं है।

(१०)

अहंकार संसार-सागर में गोते खिलाने वाला है। शरीर सुन्दर हुआ, पैसा कुछ ज्यादा इकट्ठा हो गया थी ए या एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, दुकान में नफा होने लगा या ग्राहक अधिक आने लगे, प्लीडर साहब बन गये बस अहंकार आ जाता है। यह सब अहंकार आने के कारण हैं। मगर सत्वशाली मनुष्य वही है जो अहंकार की सामग्री विद्यमान होने पर भी-विद्या, सम्पत्ति, बल रूप प्राप्त होने पर भी अहंकार नहीं करता।

(११)

मैं रूप का या बल का अभिमान करूँ

निक दृष्टि से देखा जाय तो मैं अरूपी हूँ। रूप

स्वभाव है आत्मा का स्वभाव ही नहीं है। रूप

है और मेरा कलंक है। मेरे लिए जो कलंक का

पर अभिमान कैसे करूँ? ब- का गुण है

अनंत है। उस भी

मुझे प्राप्त नहीं है।

(१)

कुल और जाति का अभिमान करना मूर्खता है। अनादि काल से संसार में भ्रमण करते करते इस जीव ने सभी जातियों में और सभी कुलों में अनन्त अनन्त बार जन्म धारण किया है। अनन्त बार यह चाण्डाल कुल में जन्म ले चुका है। फिर जाति और कुल का अभिमान किस लिए ? और दर-असल न तो कोई जाति ऊंची होती है और न नीची होती है। उच्चता और नीचता का आधार कर्त्तव्य है। ऊँचा कर्त्तव्य करने वाला ऊँचा और नीचा कर्त्तव्य करने वाला नीचा होता है।

(१२)

तुम्हें ऐश्वर्य मिला है तो उसके अभिमान में ऐंठना ठीक नहीं है। कितना ऐश्वर्य है तुम्हारे पास ? चक्रवर्ती वासुदेव और बड़े २ सम्राटों के ऐश्वर्य के आगे तुम्हारे ऐश्वर्य की क्या गिनती ? वे भी खाली हाथ चले गए तो तुम क्या लेकर जाने वाले हो ?

(१४)

क्या तू जवानी का घमंड करता है ? जवानी का घमंड करने से पहले बूढ़ों से तो पूछ ले। वह भी एक दिन तेरे ही समान जवान थे। पर आज उनकी क्या अवस्था है ! तू समझता है कि वही बूढ़े हुए हैं और तू सदा जवान बना ही रहेगा कभी बूढ़ा नहीं होगा जवानी तो समुद्र की हिलोर है आई और चली गई। उस पर इतराना क्या ?

(१५)

जब तक मन शरीर के भीतर है शरीर में शक्ति है। सारा मल निकल जाय तो हाथ पर भी नहीं हिल सकते आँख भी नहीं खुल सकती इस प्रकार जिसकी जिन्दगी मल पर निर्भर है उसे अभिमान करना क्या शोभा देता है ?

(१६)

जरा विचार कीजिए कि आपके पास अभिमान करने योग्य क्या है ? आपका शरीर इतना अशुचि है कि संसार में दूसरी कोई वस्तु इतनी अशुचि नहीं। जिसमें से निरन्तर अशुचि पदार्थ बहते रहते हैं जो क्षण भर में निर्जीव बन कर घोर बदबू देने लगता है और फिर जिसे प्रिय से प्रिय स्वजन भी शीघ्र से शीघ्र आग में भेंट करने को तैयार हो जाते हैं उस शरीर पर अभिमान !

(१७)

भाइयो ! पुण्य के योग से तुम्हें सुन्दर सघन और स्वस्थ शरीर मिल गया है तो अभिमान मत करो। शरीर में अभिमान करने की बात है भी क्या ? अगर शरीर की असलियत का विचार किया जाय तो यही नतीजा निकलता है कि देह अपवित्र है अपावन है कम से कम अभिमान करने योग्य तो नहीं ! देखो न कैसा मल का पुतला है यह शरीर ! नाक में से रेंट झरता है आँखों में से गीड़ निकलता है मुँह में से कफ तथा थूक निकलता है एक तरफ से मूत्र और एक

(२७)

तुम्हारे सामने से दो रास्ते जाते हैं। उनमें एक रास्ता पतन का है और दूसरा उत्थान का। अगर उत्थान के मार्ग पर चलोगे तो सर्वोत्कृष्ट देव विमान–सर्वार्थसिद्ध में पहुँच जाओगे और फिर एक भव करके मुक्ति प्राप्त कर लोगे। पतन के रास्ते पर चलने से नरक और निगोद में जाना पड़ता है। 'मैं कुछ नहीं हूँ', यह उत्थान का मार्ग है और 'मैं ही सब कुछ हूँ, जो हूँ मैं ही हूँ' यह पतन का मार्ग है।

(२८)

जब तक आपके दिल में दया है और दिमाग में गरीबी का भाव है, तभी तक ईश्वर आपके साथ है। जिस क्षण आपके चित्त में अहंकार का अंकुर उत्पन्न हो जाएगा और आप समझेंगे कि जो कुछ हूँ मैं ही हूँ, उसी क्षण ईश्वर आपका साथ छोड़ देगा।

(१)

जो मनुष्य प्रतिष्ठा या पूंजी बढ़ने पर भी समभाव में रहता है, वही उन्नति करता है। जो जरासा उन्नत होते ही आसमान में उछलने लग जाता है उसकी उन्नति तो रुक जाती है। वह अवनति के गहरे गर्त में भी गिरे बिना नहीं रहता।

(३०)

जहां मान है वहीं अपमान है। ध्यान लगाकर देखोगे तो पता चलेगा कि जहां अभिमान है वहां ईश्वर नहीं है।

(३१)

अपने मुंह अपनी प्रशंसा करना एक प्रकार की मूर्खता है। वह प्रशंसा समझदारों के सामने अप्रशंसा रूप हो जाता है। अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने वाला घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

(३२)

जहाँ अभिमान है वहां विनय नहीं और जहां विनय नहीं वहां विवेक नहीं बुद्धि नहीं, नम्रता नहीं, मृदुता नहीं, गुण ग्राहकता नहीं। इस प्रकार विचार करने से विदित होगा कि अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सब सद्गुणों को नष्ट करने वाला है। वह अनेक अनर्थों का मूल है।

-: विनय :-

(१)

विनय अखण्ड सुखस्वरूप मुक्ति का प्रदान करता है, विनय से सब प्रकार की श्री प्राप्त होती है विनय से प्रीति की उत्पत्ति होती है और विनय से मति अर्थात् ज्ञान का लाभ होता है।

(२)

भाइयो, नम्रता बड़ी भारी चीज है। नम्रता विनय है और विनय तपस्या है। तपस्या से कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा होने पर कर्म हट जाते है और आत्मा विशुद्ध हो जाती है। आत्मा की विशुद्धि होने पर केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रकट होते है। इसलिये नम्रता बड़ी भारी चीज है।

(३)

किसी भी प्रकार की खेती करने के लिए पहले जमीन को कोमल बनाने की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार गुण को प्राप्त करने के लिए विनय की आवश्यकता होती है।

(४)

अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं और गुणवान् बनना चाहते है तो विनय को ग्रहण कीजिये। विनय नरम धर्म

है। उससे इस भव में भी अनन्त लाभ होते हैं और परभव में भी महान कल्याण होता है।

(५)

ज्ञान का फल निरभिमानता है अभिमानी होना नहीं। जिसने श्रुतज्ञान प्राप्त किया है, वह ज्ञान की असीमता को भली-भांति समझ लेता है। कहा जाता है कि श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक निर्मल केवल ज्ञान है। उसकी तुलना में मेरा अधिक से अधिक ज्ञान भी नगण्य है। फिर अभिमान किस बिरते पर किया जाय?

(६)

जैसे मूल के उखड़ जाने पर वृक्ष-खड़ा नहीं रह सकता उसी प्रकार विनय के बिना धर्म स्थिर नहीं रह सकता। विनीत पुरुष सम्पत्ति का अधिकारी होता है और अविनीत आपत्तियों में घिरा रहता है।

(७)

विनय-धर्म आत्मा में मृदुता उत्पन्न करता है। आत्मा की मृदुता अन्य समस्त सद्गुणों को साथ लाती है। अतएव मार्दव (विनय) भाव को अपनाओ। अभिमान को त्यागो। अभिमानी व्यक्ति सद्गुणों से वंचित रहता है और दूसरों की दृष्टि में तिरस्कार एवं घृणा का पात्र बनता है।

लोहा कितना कठोर होता है। एक मोहर के बदले बहुत-सा लोहा खरीदा जा सकता है। पर जब वह नरम होता है तब उसमें औजार बनाये जाते हैं और एक एक औजार हजारों की कीमत का बन जाता है। यह मृदुता का ही प्रभाव है।

(९)

नम्रता वह वशीकरण है कि दुश्मन को भी मित्र बना लेती है। पाषाण हृदय को भी पिघला देती है। देखो तो, पत्थर कितना कठोर होता है। उसमें यदि रस्सा गड़ाया जाय तो वह टूट जायगा लेकिन पत्थर का कुछ नहीं बिगड़ेगा। मगर रस्सी कितनी मुलायम होती है। प्रतिदिन रस्सी रगड़ने से पत्थर में भी खड्डे पड़ जाते हैं। वास्तव में नम्रता और कोमलता बड़ी काम की चीज है। वह जीवन का बढ़िया शृंगार है आभूषण है। उससे जीवन चमक उठता है।

(१०)

सिर कौन झुकाएगा ? जिसमें गुरुता होगी, महत्ता होगी और साथ ही जो अपने को कुछ नहीं समझेगा। जो अपने को कुछ नहीं समझेगा वही सब कुछ समझा जायगा और जो अपने आपको सब कुछ समझेगा, वह कुछ भी नहीं समझा जायगा। वह अपने को भले बड़ा समझे परन्तु लोग उसे तुच्छ समझेंगे।

(११)

आम के वृक्ष में जब फल लगते हैं तो नव जाता है नम जाता है। इसी तरह इमली आदि के फल वाले वृक्ष नम जाते हैं। मगर अरंड नहीं नमता है और कदाचित नम जाता है तो टूट जाता है। आशय यह है कि जिसमें क्षुद्रता है तुच्छापन है वह नमना नहीं जानता। नमेगा तो योग्य ही नमेगा। विनय बड़े आत्मियों का लक्षण है और अभिमान तुच्छ व्यक्तियों का लक्षण है। नमने से आत्मा बड़ा माना जाता है।

(१२)

जैसे जड़ उखड़ जाने पर सम्पूर्ण वृक्ष धराशायी हो जाता है उसी प्रकार विनय के अभाव में कोई भी धर्म नहीं टिक सकता।

(१३)

अगर तुम्हारा अन्तःकरण विनय से विभूषित होगा तो उसमें धर्म का मधुर फल देने वाला अंकुर अपने आप ही अंकुरित हो जायगा।

(१४)

धर्म में नम्रता धारण करने से लाभ मिलता
संसार-व्यवहार में नम्रता धारण करने से जीवन
होता है। रेल की मुसाफिरी में नम्रता

प्रति विनय भाव रखता है प्रत्येक छोटा अपने से बड़े के सामने विनम्रता पूर्ण व्यवहार करता है, उस कुटुम्ब में आनंद मंगल रहता है। स्नेह का मधुर रस बरसता है। बहू सासू का विनय करेगी तो वह जब स्वयं सासू बनेगी तो उसकी बहू भी उसके प्रति विनय युक्त व्यवहार करेगी।

(२१)

देखो ! रजकण हल्के होने से उड़कर रईसों के सिर पर भी पहुंच जाते हैं, लेकिन पत्थर कठोर होने से ठोकर खाते रहते हैं।

(२२)

जैसे पानी नीचे की ओर ही बहता है ऊपर की ओर नहीं, उसी प्रकार गुण विनयशील व्यक्ति में ही आते हैं। अभिमान के कारण जिसकी गर्दन ऊँची बनी रहती है, उसमें गुण नहीं आ सकते।

(२३)

कपड़ा कहीं से थोड़ा सा फट जाय और उसी समय सांध लिया जाय तो अधिक फटने नहीं पायगा। अगर लापरवाही रखी तो वह फटता ही चला जाता है और पहनने के काम का नहीं रहता। यही हाल अविनीत शिष्य का होता है। अतएव विनय धर्म को अंगीकार करके अविनय से दूर होना चाहिए।

(४)

जैसे सपूत बेटा बाप की भक्ति में और सती बहू सासू की भक्ति में उद्यत रहता है उसी प्रकार चेले को गुरु की भक्ति में तत्पर रहना चाहिए। इससे चेले की आत्मा को शान्ति लाभ होता है। गुरु को समझना चाहिए कि चेला मेरे संयम में सहायक है आध्यात्मिक ... ... पहचान ... है और चेले को समझना चाहिए कि गुरु मेरे ... साक्षात् भगवान ... प्रकार मन से निराकार ... प्रकाश देने वाले हैं। ... साक्षात् ... हैं। इस प्रकार विचार कर व्यवहार करने में दोनों का ही कल्याण होता है।

(५)

नाक कितना ही ऊंचा क्यों न हो ललाट से तो नीचा ही रहेगी। इसी प्रकार चेला कितना ही बड़ा क्यों न हो जाय गुरु से तो नीचा ही रहेगा। वह तपस्वी है त्यागी है यह ठीक है, फिर भी वह गुरु से ऊँचा नहीं हो गया है।

(६)

जब गुरु के चरणों में भक्ति पूर्वक मस्तक झुकाया जाता है तो मस्तक से समस्त पापों की पोटली नीचे गिर जाती है। सिर झुकाने पर मस्तक पर रक्खी हुई पोटली का गिर पड़ना स्वाभाविक ही है। मस्तक नम्र ... भार दूर करता है। इसके विरुद्ध जो लोग अकड़ कर खड़े रहते हैं उनके सिर पर पापों की ... रह जायगी। वह नीचे नहीं पड़ेगी।

—: क्षमा :—

(१)

क्षमा दुनिया में बड़ी चीज है। उससे इहलोक भी सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। जिसके घर में क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा होगी उसके घर में शान्ति रहेगी और अलग-अलग चूल्हे नहीं जलेंगे। अलग-अलग चूल्हे के साथ कुटुम्बीजनों के दिल भी जला करते हैं, इसका कारण क्षमा का न होना ही है।

(२)

अगर आपके हाथ में क्षमा की ठंडी तलवार है तो दुष्ट से दुष्ट जीव भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। पानी में आग पड़ जायगी, तो वह पानी को जला नहीं सकेगी, बल्कि स्वयं ही बुझ जायगी।

(३)

क्षमा आत्मा का बख्तर है। जिसने इस बख्तर को धारण कर लिया उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। विरोधियों के वाग्बाण उस पर असर नहीं कर सकते, प्रहार उस पर निरर्थक साबित होते हैं। उसका चित्त किसी भी आघात से क्षुब्ध नहीं होता। विरोधी झल्लाता है चिल्लाता

है बकवाद करता है और आघात करता है, पर क्षमावीर पुरुष उसके सामने मुस्कराता है। वह अपनी सरल और निर्दोष मुस्कराहट से उसके समस्त प्रयत्नों को बेकार बना देता है।

(४)

क्षमा–शीतलता में बड़ी शक्ति है। शत्रु कितना ही गर्म होकर क्यों न आया हो कितनी ही वचन रूपी चिनगारियाँ छोड़ रहा हो और क्रोध की आग से तमतमा रहा हो अगर सामने वाला शीतलता पकड़ ले, अर्थात् शांति धारण कर ले तो उसे शान्त होना पड़ता है।

(५)

भाइयों! बिजली कड़क कर नदी या समुद्र में पड़ती है मगर उससे कुछ भी बिगाड़ नहीं होता। वह स्वयं बुझ जाती है और खत्म हो जाती है इसी प्रकार क्षमाधारी पवित्र समक्ष क्रोध निष्फल हो जाता है।

(६)

जिसका अन्तःकरण क्षमा से विभूषित होता है उसकी कीर्ति सारे संसार में फैल जाती है। वह अपने आनन्द के लिए ही क्षमा का सेवन करता है कीर्ति की कामना से प्रेरित होकर नहीं, फिर भी उसकी कीर्ति फैल ही जाती है। पुष्प सुगन्ध फैलाना नहीं चाहता, फिर भी अगर उसमें है तो वह बिना फैले कैसे रह सकती है?

(७)

आग से आग शान्त नहीं होती खून से खून साफ नहीं होता क्रोध से क्रोध शान्त नहीं होता। आग को शांत करने के लिए खून को धोने के लिए पानी की आवश्यकता है। क्रोध को उपशान्त करने के लिए क्षमा चाहिये।

(८)

क्षमा की प्रबल शक्ति के सामने दूसरी कोई भी शक्ति नहीं टिक सकती। जैसे पानी में गिरी हुई आग अपने आप ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार क्षमा के सामने दुर्जातीय आदि दुर्भाव भी स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

(९)

बात बात में कुपित हो जाने वाला गुरुजनों की जरा-सी कठोर वाणी को सुनते ही आग उगलने वाला और क्रोध की आग में स्वयं जलने तथा दूसरों को जलाने वाला शिष्य योग्य नहीं है। अतएव जो क्रोधरहित होता है जिसका अंतःकरण शान्त रहता है वही शिक्षा पा सकता है।

(१०)

क्रोध कर आप भी आग बबूला हो गया और नाग के सामने नाग बनने की नीति अख्तियार की तो उसका भी फजीता होगा और आपका भी फजीता होगा। वह क्रोधी है और आप भी क्रोधी हो जाएंगे तो दोनों में क्या अन्तर रहा

जायगा ? उसके समान बन जाने पर भी आपको कोई लाभ नहीं होगा ? आपका आत्मा तो कषाय से कलुषित हो ही जायगा।

(११)

क्या दुःख सहे बिना सुख नहीं मिलता है। बच्चियों के कान और नाक छेदते समय उन्हें कष्ट होता है मगर बाद में जब हीरों की लटकन व लौंग पहनती हैं तो उन्हीं को हर्ष होता है अतएव भाइयो प्रयत्न करो कि तुम्हारे जीवन में क्षमा का गुण उत्तरोत्तर बढ़ता रहा जाय।

(१२)

भाइयो ! गाली देने वाला अगर नीच है तो उसको बदले चार गालियां देने वाला चौगुना नीच क्यों नहीं गिना जायगा ? वास्तव में वही ऊंचा और बड़ा है जो कटुक वचनों को शांति के साथ सहन कर लेता है।

(१३)

जिसने क्षमा रूपी तलवार अपने हाथ में ले ली है शत्रु दुर्जन उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते। पानी में फेंकी हुई आग, पानी को क्या जलाएगी, वह स्वयं ही [illegible] जाती।

~· माया ·~

(१)

आदया ! माया की शक्ति अद्भुत है। जिसके पास माया आ जाता है वह, नीति–अनीति की बात को भुला देता है। सपदा मनुष्य का घमडी बना देती है। अक्सर सम्पत्तिमान लाग सहानुभूति स हीन अकडबाज और कठोर चित्त हो जाते ह। सम्पत्ति म कुछ एसा नशापन होता है जा हृदय का शून्य बना दता है–सरस हृदय का भी नीरस बना देता है।

(२)

मायाचारी ऊपर स शा त सा दिखलाई दता है, परन्तु उसके मन म कषाय का ज्वालामुखी भभकता रहता है। उसे स्वय का शान्ति नही निराकुलता नहीं। जिस आत्मा में शा ति नहीं निराकुलता नही उसे सुख की प्राप्ति हो ही कैसे सकती है। इस प्रकार मायाचारी मनुष्य अपना जीवन दुःखमय आकुलता पूर्ण और अशान्त बना लेता है। उसका आगामी भव भी घोर क्लेश म व्यतीत होता है, क्योंकि माया अधोगति में ले जाती है।

(३)

बहुत से लोग इस भ्रम में रहते हैं कि हमने छल कपट करके धन कमाया है परन्तु छल कपट से धन नहीं मिलता। धन और दूसरी सुख सामग्री पुण्य के योग से मिलती है। इसलिए छल कपट छोड़कर पुण्य का उपार्जन करो।

(४)

जो आदमी मकान का बहुत किराया दे और बच्चों को सब मिठाई खिलावे उससे सावधान रहना चाहिए। समझ लो कि वह धोखा देगा। धूर्त लोग मीठा बोलकर गजब कर डालते हैं। दगाबाज जो न करें सो थोड़ा है।

(५)

माया मनुष्यों को गधे की तरह दुलत्ती झाड़ती है। जब लक्ष्मी आती है तो कमर पर ऐसा कस कर ऐसी कस कर लात लगाती है कि मनुष्य की छाती आगे निकल आती है। इसलिए तो सम्पत्ति वाले सीना फुलाकर अकड़ता हुआ सा चलता है। और जब वह जाने लगती है तो उस फूली हुई छाती पर लात मारती है। इसी कारण लक्ष्मी के चले जाने पर लोग झुक जाते हैं, उनकी छाती भीतर की ओर घुस जाती है।

(६)

परमात्मा के दरबार में तो उन्हीं की पहुँच। भीतर बाहर से एक से शुद्ध और पवित्र होंगे। जो

बगुला के समान और जीवन में कायर के समान है, उन ढोंगियों का कपटियों का निस्तार होने वाला नहीं है। ढोंग से दुनिया को ठग सकते हो परन्तु परमात्मा को नहीं ठग सकते। यदि निस्तार चाहते हो और भगवद्भक्ति का आचरण करना चाहते हो तो निष्कपट बनो।

(७)

मायाचारी की बात पर किसी को विश्वास नहीं होता। मायावी मनुष्य छल-कपट करके दूसरों के लिए जाल बुनता है मगर अन्ततः वह स्वयं ही अपने बुने जाल में फंसता है।

(८)

विश्वासघात किसी को आनन्द दायक नहीं हो सकता। विश्वासघाती के चित्त में कभी शान्ति नहीं रहती। वह अपने विचारों के तन्तुओं से न जाने कितने ताने बाने बुनता रहता है और अपना भेद खुल जाने के भय से डरता रहता है। न उसे इस जीवन में चैन मिलती है न परलोक में ही। स्वर्ग का भव्य द्वार उसके लिए बन्द है।

लोभ

(१)

यह लोभ समस्त पापों का बाप है। लोभ के कारण ही समस्त पापों की उत्पत्ति होती है। यही द्वेष और शत्रुभाव का जनक है कोई ऐसा पाप नहीं जो लोभ के कारण न हो सके।

(२)

लोभ समस्त दोषों की खान है। समस्त गुणों को ग्रसने वाला राक्षस है। समस्त संकटों का मूल है और सब अनर्थों का साधक है।

(३)

लोभ मनुष्य का बड़ा ही भयानक शत्रु है। वह हजारों पापों का [illegible] कर देता है। कौन ऐसा अन्याय है जो लोभ से उत्पन्न न होता हो।

(४)

लोभ कषाय के वशीभूत हुआ मनुष्य आँख रहते भी अंधा बन जाता है, कान रहते भी

अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का भान नहीं रहता। लोभी अपने मित्रों के साथ भी धोखा और विश्वासघात करने से नहीं चूकता।

(५)

जिसके अन्तःकरण में लोभ रूपी पिशाच प्रवेश कर गया है उसके लिए कोई भी जघन्य कृत्य कठिन नहीं है वह अपने माता पिता की हत्या कर सकता है अपने पुत्र और मित्र की घात कर सकता है वह स्वामी के प्राण ले सकता है यहाँ तक कि अपने सहोदर भाई की जान भी लेने से नहीं चूकता।

(६)

लालची मनुष्य केवल धन-दौलत को ही देखता है। उस धन को प्राप्त करने में और उसको प्राप्त कर लेने के फल स्वरूप कितनी विपत्ति झेलनी पड़ेगी इस बात को वह जरा भी नहीं देखता। बिलाव दूध को ही देखता है दूध के पास जाने पर लाठी के होने वाले प्रहार की ओर से वह आँखें मींच लेता है।

(७)

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध से द्रोह पैदा होता है और द्रोह के प्रभाव से नरक में जाना पड़ता है। विचक्षण मनुष्य भी लोभ के कारण मूर्ख बन जाता है।

(८)

लोभी मनुष्य सुख का स्वाद लेना नही जानता । वह दुःखों को भोगने और पापों का उपार्जन करने के लिए ही जीवित रहता है ।

(९)

लोभ से सब पापो में प्रवृत्ति होती है । जितना लोभ करोगे उतनी ही गरीबों के गले पर छुरा फिरेगा । सौ हजार धनियों को गरीब बना कर एक लक्षपति बनता है । लक्षपति बन कर जिसने गरीबो की सहायता नही की वह उस संचित किये धन का क्या करेगा ? छाती पर बांध कर परलोक में ले जाएगा ? चक्रवर्ती की असाधारण ऋद्धि भी जब यही पड़ी रह जाती है तब ए श्रीमन्त ! तेरी लक्ष्मी क्या तेरे साथ जाएगी ?

(१०)

प्रकार इन तीन पापों से एक-एक ही सद्गुण नष्ट होता है, परन्तु लोभ-लालच से तो सर्वनाश हो जाता है।

(१२)

ज्यों ज्यों लाभ होता जाता है त्यों त्यों लोभ बढ़ता जाता है। असल बात तो यह है कि लाभ से ही लाभ बढ़ता है। लोभ वृद्धि का कारण लाभ है। अतएव कारण की अधिकता होने पर कार्य की अधिकता होना स्वाभाविक है।

(१३)

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है माया से मित्रता का नाश होता है, परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। वह तमाम अच्छाइयों पर पानी फेर देता है।

(१४)

समग्र संसार लोभ से अभिभूत है। लोभ के कारण ही समस्त पापों का आचरण किया जाता है। लोभ पाप का बाप है। मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ कितनी है? उसका छोटासा शरीर है और छोटासा पेट है। शरीर ढँकने और पेट भरने के लिए संसार भर की सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है। करोड़ों और लाखों
पेट के लिए
वस्त्र से ही
आता है, न
कि उसे सिद्ध

-- तृष्णा :--

(१)

जसे आकाश का कहीं और कभी अत नहीं है उसी प्रकार तृष्णा का भी कहीं अन्त नहीं है।

(२)

समुद्र का छोर है पर तृष्णा का छोर नहीं है।

(३)

अगर आप दुखों की जड को तलाश करते चलेगे तो मालूम होगा कि वह जड असन्तोष ही है। अधिकांश लोग असन्तोष के कारण ही दुखी देखे जाते हैं। मनुष्य को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए कितना चाहिए? वह पेट में कितना अन्न खा सकता है और कितने कपडे लपेट सकता है? जितने की आवश्यकता होती है, उतना प्राय सभी को मिल जाता है। फिर भी उनके अन्त करण मे असन्तोष का आग दहकती रहती है। वे उस आग मे अपने जीवन की सम्पूर्ण शान्ति और निराकुलता को स्वाह कर देते हैं। "आवश्यकता है तन की और तृष्णा है मन की"। सोने को चार हाथ चाहिए, पर विशाल महल बनवा लेने पर भी सन्तोष

एक महल बन गया है तो दूसरे के मनसूबे किये जा रहे हैं। हजारों है तो लाखों की तृष्णा लगी है और लाखों है तो करोड़ों की कामना हो रही है। निश्चित है कि इतनी सम्पत्ति उपयोग में नहीं आ सकती फिर भी सन्तोष कहाँ है?

(४)

धन की मर्यादा नहीं करोगे तो परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। लकड़ियाँ झोंके जाओ और आग बढ़ती चली जायगी। इंधन डालते जाने में आग कभी शान्त नहीं हो सकती। तृष्णा भी आग है। उसमें ज्यों-ज्यों धन का इंधन झोंकते जाओगे वह बढ़ती ही जायगी। वह विकलता पैदा करेगी, चैन नहीं लेने देगी। तो भाई ऐसे धन से क्या लाभ हुआ? इस धन ने तुम्हें क्या सुख दिया? इसीलिए मैं कहता हूँ कि धन की मर्यादा कर लो। न करोगे तो तृष्णा की आग में झुलसते जाओगे, शांति नहीं पाओगे और अपने जीवन को बर्बाद कर लोगे।

(५)

बाहर की अग्नि से अधिक जबर्दस्त अग्नि तृष्णा की है। स्थूल अग्नि से तो स्थूल पदार्थ ही जलते हैं परन्तु तृष्णा की आग में आत्मा भी जलती है। तृष्णा की आग व्यापक है। सारा संसार इस आग में जल रहा है। भगवान् के नाम-कीर्तन से वह आग भी शान्त हो जाती है।

जैसे आग से घी। शान्त नहीं होती। उसी प्रकार से धन से धन की तृष्णा शान्त नहीं होती। जैसे ईंधन डालने से आग बढ़ती ही चली जाती है उसी प्रकार धन को प्राप्त करने से धन की इच्छा भी बढ़ती ही जाती है।

(३)

भाइयो! जैसे आग को शान्त करने के लिये पानी अपेक्षित है, उसी प्रकार तृष्णा की आग को बुझाने के लिये सन्तोष धारण करने की आवश्यकता है भगवान् ने निर्देश किया है कि परिग्रह को कम करोगे और अपनी इच्छा पर नियन्त्रण करोगे तभी यह आग शान्त हो सकती है। इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयास करोगे तो यह आग इन्धन के पल्ले बढ़ती ही चली जायगी।

(९)

असंतोष दुःख का बीज है। कितनी ही सम्पत्ति क्यों न हो, अगर उसके साथ संतोष नहीं है तो वह शान्ति प्रदान नहीं कर सकेगी। इसके विपरीत सन्तोषी पुरुष स्वल्प सामग्री में ही परम सुख का आस्वादन कर लेता है।

(१०)

देखा साँप हवा का पान करते हैं फिर भी दुर्बल नहीं होते। जंगली हाथियों को बादाम का हलवा कोई नहीं खिलाता व रूख-सूख तिनके खाते हैं। फिर भी किसने बलशाली होते हैं? इसका कारण क्या है? असली बात यह है कि वे संतोष धारण करते हैं और संतोष के प्रभाव से उनका काम चल जाता है संतोष ही मनुष्य के लिए बड़े से बड़ा खजाना है।

(११)

अगर सच्चा सुख और सच्ची शान्ति चाहते हो तो धन की मर्यादा करके तृष्णा पर अंकुश लगाओ।

(१२)

चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव की सम्पत्ति पा लेने पर भी, संतोषहीन मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता और तृप्ति के बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसा जान कर धीर पुरुष कभी लोभ-रूपी ग्रह के अधीन नहीं होते हैं।

— ईर्ष्या —

(१)

ईर्ष्यालु पुरुष दूसरे का उत्कर्ष सहन नहीं कर सकता उसने किसी की बड़ाई सुनी और उसके दिल में द्वेष का दावानल भड़क उठा। जैसे चुपचाप चले जाते राहगीर को देखकर कुत्ता निष्कारण ही भौंकने लगता है। इसी प्रकार किसी भी भाग्यशाली को देखकर ईर्ष्यालु जलने लगता है।

(२)

भोगी त्यागी को देखकर जलता है। धनवान को देखकर निर्धन कुढ़ते हैं निरोग को देखकर रोगी जलता है सुन्दर और रूपवान पर नजर पड़ने से कुरूप को जलन होती है। यह स्वाभाविक है। इसमें कोई अजब सी बात नहीं है।

(३)

पानी की वर्षा होती है तो सब प्रकार की वनस्पतियाँ फलती-फूलती हैं। किन्तु जवासा नामक एक झाड़ी इसका अपवाद है। जब जब वृष्टि होती है वह सूखती जाती है। यदि जवासा को पसन्द नहीं आती तो कहो भाई! इसमें पानी का क्या दोष? इसी प्रकार जो पुरुष दुर्गुणों का अखाड़ा बना—

हुआ है यह सद्गुणों और सद्गुणवालों की देख २ कर ईर्षा की आग से तपता रहता है और सुखता जाता है। दुर्गुणी को गुणवान की बात पसन्द नहीं आती यहां तक कि किसी किसी पापी को तो परमात्मा की महिमा भी नहीं रुचता है। इसमें गुणवान का क्या दोष है।

तो भी दुबला ही बना रहता है । द्वेष से मनुष्य को घोर हानि उठानी पड़ती है । द्वेषी मनुष्य स्वयं तो हानि उठाता ही है पर दूसरों को भी हानि करता है ।

(५)

द्वेष एक प्रकार की अग्नि है । यह अग्नि जब हृदय में भड़कती है तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है । वह उस आग से दूसरों को जलाना चाहता है । दूसरा जले या न जले वह स्वयं तो बुरी तरह जल ही जाता है ।

(६)

दूसरों के द्वेष भाव को शान्त करने का उपाय यह नहीं कि बदले में द्वेष किया जाय । आग से आग शान्त नहीं होती । आग को शान्त करने के लिए जल अपेक्षित है । इसी प्रकार द्वेष का नाश मैत्री से होता है ।

(७)

भाइयो ! अगर आप अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बनाना चाहते हैं तो द्वेष का परित्याग करो । द्वेष की आग में अपने आपको जलाना तनिक भी बुद्धिमत्ता नहीं है । द्वेष का दुर्गुण आपको पतन के गहरे गड्ढे में गिराने वाला है । द्वेष की आग आपके समस्त सद्गुणों को जलाकर भस्म कर देगी उसमें आपका जीवन निष्फल हो जायगा ।

(१२)

राग और द्वेष दोनों ही कर्म बन्ध के कारण हैं। इनके प्रभाव से मन और आत्मा की स्वस्थता नष्ट हो जाती है। इसी कारण शास्त्र में इन्हें कर्मों का बीज कहा है। अतएव जो आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं उन्हें राग-द्वेष को निरंतर घटाने का ही प्रयत्न करना चाहिये। उन्हें अधिक से अधिक समभाव की वृद्धि करनी चाहिए।

(१३)

राग भाव अनादि काल से आत्मा के साथ लगा हुआ है। इस राग की आग में आत्मा झुलस रही है। राग ही केवल-ज्ञान केवल-दर्शन और यथाख्यात चारित्र में बाधक है। ज्योंही राग भाव निर्मूल हो जाता है त्योंही आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग चारित्र का अधिकारी हो जाता है।

(१४)

भाइयो! अगर आपको स्नेह ही करना है तो परमात्मा से स्नेह करो। परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ प्रीति करोगे तो सांसारिक पदार्थों से सर्वथा प्रीति हट जायगी और उससे आत्मा का उत्थान और कल्याण होगा। परमात्मा से प्रेम न करके जो लोग संसार की वस्तुओं से प्रेम करते हैं, वे अपने लिए नरक का द्वार खोलते हैं।

-: निंदा :-

(१)

अगर आप दूसरों की निन्दा करने वाले हैं तो समझ लीजिए कि आप दुनियाँ की गन्दगी को खोज-खोज कर अपने भीतर भर रहे हैं। अपने आपको मलीन बनाने चले हैं। अपने मार्ग में काँटे बिछाने चले हैं। कल्याण के मंगल द्वार में ताला लगाने चले हैं।

(२)

कौवे को कितनी ही मिठाई खिलाओ, वह गन्दगी पर बैठे बिना नहीं रह सकता। पर कौवे का कौन आदर करता है इसी प्रकार निन्दक की कहीं कद्र नहीं होती। निन्दक से पाला पड़ता है तो लोग कहते हैं अजी जनाब, आप तशरीफ ले जाइए, कहीं आपके मुख से कीड़े न झड़ पड़ें।

(३)

दूसरे के दोषों का ढोल पीट कर ही क्या तुम गुणी बन जाना चाहते हो? नहीं दूसरे के दोष देखना और उन्हें फैलाना तो स्वयं एक महान दोष है। इस दोष का सेवन करके तुम दोषी हो बन सकते हो गुणी नहीं बन सकते।

(४)

जो साधु साध्वी श्रावक या श्राविका तत्त्व का स्वरूप समझ गया है, ज्ञान-ध्यान भी करता है, तपस्या भी करता है, फिर भी अगर यह रटता है कि हम अच्छे हैं और दूसरे बुरे हैं, हम धर्मात्मा हैं और दूसरे अधर्मी हैं, हम भक्त हैं और दूसरे दुष्ट हैं, तो अपने मुख से अपनी महिमा करता है और दूसरे की निन्दा करता है। वह अपनी करनी पर पानी फेरता है। वह अपनी आत्मा को गिराता है। इसका ज्ञान, ध्यान तप और त्याग आत्मशुद्धि का कारण न होकर कषाय का पोषक बन जाता है।

(५)

विवेकवान् पुरुष किसी की निन्दा नहीं करते। वे सोचते हैं कि पराई निन्दा करने में हमें क्या लाभ है? निन्दा करने से मुंह मीठा नहीं होता, सम्पदा नहीं मिलती, बड़ाई भी नहीं मिलती, कल्याण भी नहीं होता। यही नहीं, परनिन्दक समझदार लोगों में हीन दृष्टि से देखा जाता है और ज्ञानियों की दृष्टि में व्यर्थ ही पाप का उपार्जन करता है।

(६)

समझदार व्यक्ति नारद-प्रकृति लोगों को अपने पास नहीं फटकने देते। कदाचित उनकी बात सुन लेते हैं तो उस पर ध्यान नहीं देते और सुनी अनसुनी कर देते हैं। अथवा सुनाने वाले से स्पष्ट कह देते हैं कि भाई तुम अपना काम

रूगो। दूसरा मुंह गाली देता है तो देने दो। जब मेरे सामने दिया तो मैं निपट लूगा। इस प्रकार साफ उत्तर देने से भिड़ाने वाले का साहस टूट जाता है। वह फिर उसके सामने नहीं बोलता।

(७)

भाइयो! निन्दा करने से बचो। दूसरों की रास लेकर अपने मस्तक पर बिस्तर लेने से क्या लाभ है? संसार में गुणीजन बहुत है। उनके गुणों को देखो और प्रशंसा करो। इससे आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

(८)

पाप की निन्दा करो, मगर पापी की निन्दा मत करो।

(९)

साधु की भूल देखकर जो निन्दा करते हैं, हंसी करते हैं उन्हें समझना चाहिए कि लाठी कैसी भी टूटा फूटा क्यों न हो, मटके को तो वह फोड़ ही सकती है।

(१०)

आत्म-निन्दा करने से अपने दोषों के प्रति असन्तोष जागृत होता है और आत्मा की शुद्धि होती है। पर की निन्दा करने में आत्मा की मलिनता बढ़ती है। आत्मा का पतन होता है। और लाभ कुछ होता नहीं। अतएव अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो पर-निन्दा के पाप से दूर रहना चाहिए।

(४)

जो साधु साध्वी श्रावक या श्राविका तत्त्व का स्वरूप समझ गया है पारस्परिक तो करता है, तपस्या भी करता है, फिर भी अगर वह कहता है कि हम अच्छे हैं और दूसरे बुरे हैं, हम धर्मात्मा हैं और दूसरे अधर्मी हैं, हम भक्त हैं और दूसरे दुष्ट हैं जो अपने मुख से अपनी महिमा करता है और दूसरे की निन्दा करता है। वह अपनी करनी पर पानी फेरता है। वह अपनी आत्मा को गिराता है। इसका ज्ञान ध्यान, तप और त्याग आत्मशुद्धि का कारण न होकर कषाय का पोषक बन जाता है।

(५)

विवेकवान पुरुष किसी की निन्दा नहीं करते। वे सोचते हैं कि पराई निन्दा करने से हमें क्या लाभ है ? निन्दा करने से मुँह मीठा नहीं होता सम्पदा नहीं मिलती बड़ाई भी नहीं मिलती कल्याण भी नहीं होता। यही नहीं परनिन्दक समझदार लोगों में हीन दृष्टि से देखा जाता है और ज्ञानियों की दृष्टि में व्यर्थ ही पाप का उपार्जन करता है।

(६)

समझदार व्यक्ति नारद-प्रकृति लोगों को अपने पास नहीं फटकने देते। कदाचित उनकी बात सुन लेते हैं तो उस पर ध्यान नहीं देते और सुनी अनसुनी कर देते हैं। अथवा सुनाने वाले से स्पष्ट कह देते हैं कि भाई, तुम अपना काम

ग्गो। दूसरा मुझे गाली देता है तो देने दो। उसे मेरे ... दता तो मैं निपट लूंगा। इस प्रकार साफ उत्तर देने से निन्दक का साहस टूट जाता है। वह फिर उसके सामने ... जाता।

(७)

भाइयो! निन्दा करने से बचो। दूसरों की ... लेकर अपने मस्तक पर बिखेर लेने से क्या लाभ है? ... प्रयोजन बहुत है। उनके गुणों को देखो और प्रशंसा करो। इसमें आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

(८)

पाप की निन्दा करो मगर पापी की निन्दा मत करो।

(९)

साधु की भूल देखकर जो निन्दा करते हैं, ... है उन्हें समझना चाहिए कि लाठी कैसी भी ... हो, मटका तो वह फोड़ ही सकती है।

(१०)

आत्म-निन्दा करने से अपने दोषों के प्रति ... जागृत होता है और आत्मा की शुद्धि होती है। पर की निन्दा करने से आत्मा की मलिनता बढ़ती है। आत्मा का पतन होता है और लाभ कुछ होता नहीं। अतएव अगर आप अपना ... चाहते हैं तो पर-निन्दा के पाप से दूर रहना चाहिए।

~: पाप :~

(१३)

परस्त्रीगामी लम्पट भी रावण के पुतल की दुर्गा करने में पीछे नहीं रहते। इसका कारण यही है कि पापी की आत्मा भी पाप से घृणा करती है। आत्मा का असली स्वभाव उस पाप के प्रति घृणा करना सिखलाता है।

(१४)

मनुष्य का जीवन एक चौराहा है। चौराहे पर प्रकाश-स्तम्भ लगा रहता है और उस प्रकाश में चारों ओर जाने वाले रास्ते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार मनुष्य जीवन चारों गतियों के लिये रास्ते जाते हैं। शास्त्र और सद्गुरु का प्रकाश इस चौराहे पर मौजूद है। चारों गतियों का मार्ग उस प्रकाश में देखा जा सकता है। आप यह भी जान सकते हैं कि किस गति में जाने से क्या हालत होगी? जिन्हें सुखमय होना प्राप्त करनी है उन्हें देवगति और मनुष्यगति की राह पकड़नी चाहिये अर्थात् धर्म कर्म करना और पापों से बचना चाहिए। पाप पहले मीठे लगते हैं पर अन्त में बहुत बुरे मालूम होते हैं।

(२)

भाइयो! पापी का आत्मा दुर्बल होती है। पाप ऐसा रोग है कि वह मनुष्य के अन्तस्तल को कुतर-कुतर कर निर्बल और निःसत्त्व बना देता है। सच्चाई के सामने पाप क्षण भर नहीं ठहर सकता।

(३)

इष्ट की प्राप्ति के लिए पाप का आचरण करना अमृत पान के विचार से जहर का [illegible] करने के समान है।

(४)

पाप मनुष्य को अपनी ही निगाहों में गिरा देता है। पाप में एक ऐसी विचित्र संतापन होता है कि वह हृदय को काटता रहता है। पापी का आत्मा सदा सशंक रहती है।

(५)

(७)

अज्ञानी पुरुष पाप-कर्म से तो बचने का प्रयत्न नहीं करता किन्तु पापकर्म के फल से—दुःख से—बचने का प्रयत्न करता है। किन्तु ज्ञानी जानता है कि विषफलों से बचने का ठीक उपाय यही है कि विषवृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया जाय! न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। जिस वृक्ष से दुःखों के विषफल उत्पन्न होते हैं, उस वृक्ष को ही उखाड़ देने में बुद्धिमत्ता है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न होने वाले दुःखों को नष्ट करने के लिए पापकर्मों से दूर रहना ही उचित है।

(८)

जैसे आगे जाने के लिए पीछे कदम उठाने वाला आदमी बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार धन, ऐश्वर्य आदि सुख की सामग्री प्राप्त करने के लिए पाप का आचरण करने वाला व्यक्ति भी विवेकवान् नहीं कहा जा सकता।

(९)

तुम सुख पाने के लिए पापों का आचरण करते हो मगर ऐसा करके कदापि सफल मनोरथ नहीं हो सकते।

(१०)

विषपान करके चिरजीवन की अभिलाषा करना घोर मूर्खता नहीं तो क्या है! इसी प्रकार पाप करके सुखी बनने की अभिलाषा भी मूर्खतापूर्ण ही कही जा सकती है।

कल्पवृक्ष या उसके फलो की कामना से प्रेरित होकर जो बबूल बोता है, उसे क्या कहा जाय ? बबूल बोने से कल्प-वृक्ष के फलो की प्राप्ति होना सभव नही है इसी प्रकार पाप मय आचरण करके पुण्य-फल की आशा रखना भी दुराशा मात्र है।

(१२)

जैसे नीम के वृक्ष मे आम के फल नही लग सकते। जैसे लाल मिर्च खाने से मुह मीठा नही हो सकता उसी प्रकार पाप करने से सुख नही मिल सकता।

(१३)

कागज की नाव बना कर और उस पर सवार होकर अगर कोई समुद्र पार होना चाहता है तो उस पागल के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? इसी प्रकार जो जुल्म करके, पाप करके फलना-फूलना चाहता है अर्थात सुखी और सौभाग्य-शाली बनना चाहता है वह भी मूर्खो की कतार मे ही खडा होने योग्य है।

(१४)

बीज बोने की तुम्हे स्वाधीनता प्राप्त है। किन्तु बीज बो देने के बाद अकुर इच्छानुसार पदा नही किये जा
तुम चाहो कि पापाचरण करके हम दु ख के बीज

उनस मुख व अकुर फूट निरल यह सवया असभव है। अपर निसान भा समझता है कि चन क बीज मे गहूँ का पौधा नहीं उत्पन हाता मगर तुम उससे भी गय बीते हो।

(१५)

पाप का परिणाम ता किसी क लिए भी अच्छा नही हाता। देखो रावण कितना प्रतापशाली और प्रचण्ड राजा था। उसका नियत बिगड गई। वह सीता जसी आदश सती का हरण करके ले गया। इस घोर पाप से उसका समस्त पुण्य क्षीण हो गया। बढिया-बढिया पौष्टिक चीजे डाल कर सीरा बनाया जाय। किन्तु अन्त म उसम सखिया मिला दिया तो वह सीरा प्राणो का सहारक होता है। इसी प्रकार एक भी भयकर पाप अनेक सुकृतो के फल को दबा देता है।

(१६)

मनुष्य अपनी करतूत को भूल जाता है। परन्तु वह करतूत अपना फल देना कभी नही भूलती। यथा समय उसे उसका फल अवश्य भोगना पडता है। पाप का प्रतिफल अत्यन्त दुखद होता है। इसीलिए म आपको सावधान कर रहा हूँ कि अपना कल्याण चाहते हो तो पाप से बचो, पाप से बचोगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

(१७)

दूसरा को पापाचरण करते देख कर स्वय पापाचरण करना योग्य नही है। अधम करके पैसा जमा करने म अन्त में

दिन नहीं प्रहित हो होगा। किसी चोर को करोड़पति होते नहीं देखा। वे दिवालिया से दिवालिया हो रहते हैं। बहुत से मासी और कजर चोरी करते हैं फिर भी भूखे के भूखे ही रहते हैं।

(१८)

अगर आप अपनी आत्मा को बचाना चाहते हैं तो पापों से दूर रहो, पाप की सराहना करने से भी बचो और पापों की निन्दा रूप पाप से भी बचो। अपनी आत्मा को निष्पाप बनाओगे तो निष्पाप बन जाओगे। आपका कल्याण होगा।

(१९)

पापाचरण करने वाला स्वयं ही पतित नहीं होता। वरन दूसरों को भी पतित होने की प्रेरणा करता है।

(२०)

भाइयो! पाप कर्म चोर है और जब इनसे सावधान रहकर बचोगे तभी तुम्हारा कल्याण होगा। जो पाप कर्मों से बचने का संकल्प कर लेते हैं वे अक्षय संपदा के धनी बन जाते हैं।

(२१)

जीवित रहने के लिए विष का पान करना जैसी मूर्खता है उसी प्रकार सुखी बनने के लिए पाप का आचरण मूर्खता है। यह उलटा प्रयास है।

(२५)

निरर्थक बातें बना कर अपने भविष्य को कष्टमय बनाना कहां की बुद्धिमत्ता है। प्रयोजन से पाप करने वाला कदाचित क्षम्य हो सकता है किन्तु निष्प्रयोजन ही आत्मा को पाप के भार से लादने वाला कैसे क्षम्य समझा जा सकता है?

(३)

दही को मथने से मक्खन निकलता है। यह बात दुनिया जानती है और आप भी जानते हैं। पर क्या जान लेने मात्र से मक्खन निकल आता है? नहीं, क्रिया किये बिना, दही को मथे बिना मक्खन नहीं निकलेगा। इसलिए हमारा कहना है कि पापों से बचो। पापों से बचे बिना तुम्हें स्वर्ग और मोक्ष नहीं मिल सकता।

(२८)

दुःख से बचना हो तो सज्जन के उपदेशों पर चलो। पाप-पंक में आकण्ठ निमग्न रहोगे और सुख भी चाहोगे तो ऐसा नहीं हो सकेगा।

(२८ अ)

जो थोड़ा से नशे में धुत्त हो जाता है, वह किसी की नहीं सुनता। इसी प्रकार जिसकी आत्मा पर पापों का गहरा नशा छा जाता है वह ज्ञानी और परोपकारी पुरुष की भी बात नहीं सुनता। कदाचित् सुनता है तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से बाहर निकाल देता है।

—: रात्रि भोजन :—

(१)

भाइयो ! रात्रि में भोजन करना बड़ा भारी पाप है। रात्रि में भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन में दाल में कीड़ी है या जीरा है ? वह तो कीड़ियों को भी जीरा समझकर खा जायगा।

(२)

ज्ञानियों ने रात्रि भोजन को अधम भोजन कहा है सूर्यास्त होने के बाद स्पष्ट दिखाई नहीं देता, अतएव रात्रि भोजन बहुत बुरी चीज है। बुद्धिमान पुरुष कभी रात्रि भोजन नहीं करते। अरे खाने के लिए दिन ही बहुत है तो रात्रि को भोजन करने से क्या फायदा है ?

(३)

हजम होने से पहिले ही खा जाओगे तो खाना पचाने के लिए पेट की मशीन को बहुत ज्यादा मेहनत करना पड़ेगी और इससे मशीन जल्दी कमजोर हो जायगी। जो लोग सूर्यास्त से पहले ही खा लेते हैं उनके पेट की मशीन को विश्राम मिल जाता है। गहरी नींद आने के कारण वह स्वस्थ रहते हैं।

(७)

रात्रि में चिड़ियाँ, कबूतर और कौवे आदि भी खाने का नहीं जाते हैं तो आप तो इन्सान हैं। रात्रि में खाना बिल्कुल मना किया गया है। रात्रि में न खाने से बारह महीने में छह महीने की तपस्या बिना जोर लगाये ही हो जाती है। इससे शुभ गति का भी बन्ध होता है और अशुभ गति का बन्ध टल जाता है।

(८)

भाइयो ! रात्रि भोजन त्याग किसी सम्प्रदाय विशेष का ही आचार नहीं है। जैसे दया, दान, क्षमा, करुणा, परोपकार, ध्यान, स्वाध्याय, सत्य आचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि साधारण हैं अर्थात् उन्हें किसी सम्प्रदाय का धर्म नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार रात्रि भोजन का त्याग भी सामान्य है। क्या जैनों के लिए और क्या वैष्णवों के लिए सभी के लिए यह आवश्यक है। जो भी रात्रि भोजन का त्याग करेगा अपना इहलोक सुधारेगा और परलोक भी सुधारेगा वह अनेक बीमारियों से भी बचेगा और दुर्गति से भी बच सकेगा।

-: धन-वैभव :-

(१)

भाइयो ! इस प्रकार पापों में हिंसा असत्य स्तेय और मैथुन की तरह परिग्रह भी महान पाप है। इससे आत्मा का अधःपतन होता है बल्कि यों कहना चाहिए कि परिग्रह सब पापों का बाप है।

( )

धन से धर्म नहीं होता वरन धन के त्याग से धर्म होता है।

(३)

जैसे स्वच्छता के लिए पहले मल लगाना और उसकी सफाई करना आवश्यक नहीं है, उसी प्रकार धर्म की आराधना के लिए पहले धन कमाना और फिर उसका त्याग करना आवश्यक नहीं है।

(४)

जिसके शरीर पर मल नहीं है वह नये सिरे से मल पड़ने दे यही उसकी स्वच्छता है, इसी प्रकार जिसके पास

धन नही है वह धन कमाने की आकाक्षा न करे। धन के प्रति ममता और मूछा का भाव उत्पन्न न होने दे इसी मे उनकी धननिष्ठा है।

(५)

धम के लिहाज से धन भी कीचड के समान है। धम साधना करने के लिए धन का परित्याग करना पडता है। ऐसी स्थिति में जो धन के प्रति ममत्वहीन है वही सबसे अधिक विवेकशाली है। जो उपार्जित किए हुए धन का परित्याग करता है वह भी विवेकशाली गिना जायगा। किन्तु जो धम के लिए पहले धन कमाना चाहता है और फिर उसका त्याग करना चाहता है उसे बुद्धिमान किस प्रकार कहा जा सकता है। वह तो उल्टी गगा बहाना चाहता है।

(६)

किसने कहा कि पसे मे ही धम होता है। धम की आराधना का तरीका तो निराला ही है, ऊचे धम की आराधना पैसे से नही होती बल्कि पसे के परित्याग से होती है।

(७)

धन सैकडों मुसीबतो का घर है, झगडो की झोपडी है, अशान्ति का भडार है, चिन्ताओ का कारण है, धम और ईश्वर को भुला देने वाला नशा है। धन विवेक का विनाश कर देता है। धनी आदमी नही सोच सकता कि मुझे चार

रोटियाँ और तन ढकने को कपड़ा चाहिए। इससे ज्यादा धन मेरे क्या काम आयेगा? वह क्या है और सिर्फ व्याकुलता ही उत्पन्न करता है। उससे शान्ति नहीं मिलती। सुख नहीं मिल सकता। यही कारण है कि लोग धन को ही सर्वस्व समझ कर उसकी उपासना किया करते हैं और आत्मकल्याण की तरफ ध्यान ही नहीं देते।

(८)

भाइयो! इस पौद्गलिक सम्पत्ति के मोह में क्यों पड़े हो? इससे तुम्हारी आत्मा का लेश मात्र भी कल्याण नहीं होगा, बल्कि यह अकल्याण का कारण बनेगी। धार्मिक धन, भावधन या चेतन धन को प्राप्त करने एवं बढ़ाने का ही प्रयत्न करो। उससे सुख पाओगे। जो महाभाग चेतन धन से सम्पन्न होते हैं, धर्म धन के धनी होते हैं उनके सामने लखपति, करोड़पति राजा चक्रवर्ती और यहाँ तक कि देवता भी नतमस्तक होते हैं।

(९)

चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखते हैं तो ऐसा जान पड़ता है, मानो दुनियाँ बावली हो रही है। रात दिन धन कमाने में लगी है। धनोपार्जन का कोई भी तरीका क्यों न हो, उसे अपनाने में मनुष्य संकोच नहीं करता। देश की हानि हो तो भले ही, धर्म जाय तो जाय, नीति मर्यादा का भंग होता हो तो बला से और आत्मा पापों से लिप्त हो तो हो मगर

धन नही है वह धन कमाने की आकाक्षा न करे। धन के प्रति-ममता और मूर्छा का भाव उत्पन्न न होने दे, इसी म उनकी धर्मनिष्ठता है।

(५)

धम क लिहाज से धन भी कीचड के समान है। धम साधना करने के लिए धन का परित्याग करना पडता है। एसी स्थिति में जो धन के प्रति ममत्वहीन है वही सबसे अधिक विवेकशाली है। जो उपार्जित किये हुए धन का परित्याग करता है वह भी विवेकशाली गिना जायगा। किन्तु जो धम के लिए पहले धन कमाना चाहता है और फिर उसका त्याग करना चाहता है उसे बुद्धिमान किस प्रकार कहा जा सकता है। वह तो उल्टी गगा बहाना चाहता है।

(६)

किसने कहा कि पसे म ही धम होता है। धम की आराधना का तरीका तो निराला ही है, ऊँचे धम की आराधना पसे से नही होती बल्कि पसे के परित्याग से होती है।

(७)

धन सकडो मुसीबतो का घर है, झगडो की झोपडी है अशान्ति का भडार है चिन्ताओं का कारण है, धम और ईश्वर को भुला देने वाला नशा है। धन विवेक का विनाश कर देता है। धनी आदमी नही सोच सकता कि मुझे चार

रोटियाँ और तन ढँकने को कपड़ा चाहिए इससे ज्यादा धन मेरे क्या काम आयगा ? वह क्या है और सिर्फ व्याकुलता ही उत्पन्न करता है। उससे शान्ति नहीं मिलती। सुख नहीं मिल सकता। यही कारण है कि लोग धन को ही सर्वस्व समझ कर उसकी उपासना किया करते हैं और आत्मकल्याण की तरफ ध्यान ही नहीं देते।

(८)

भाइयो ! इस पौद्गलिक सम्पत्ति के मोह में क्यों पड़े हो ? इससे तुम्हारा आत्मा का लेश मात्र भी कल्याण नहीं होगा, बल्कि यह अकल्याण का कारण बनेगी। आत्मिक धन, भावधन या चेतन धन को प्राप्त करने एवं बढ़ाने का ही प्रयत्न करो। उससे सुख पाओगे। जो महाभाग चेतन धन से सम्पन्न होते हैं धर्म धन के धनी होते हैं उनके सामने लखपति, करोड़पति राजा चक्रवर्ती और यहां तक कि देवता भी नतमस्तक होते हैं।

(९)

चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखते हैं तो ऐसा जान पड़ता है, मानो दुनियाँ बावली हो रही है। रात दिन धन कमाने में लगी है। धनोपार्जन का कोई भी तरीका क्यों न हो, उसे अपनाने में मनुष्य सकोच नहीं
हो तो भले ही, धर्म जाय तो
हो तो चला से और आत्मा

धन फिर जाना चाहिए। निजारिया पर आनी चाहिये। जैसे समग्र जीवन धन के लिए समर्पित है। धन देवता के आगे अपनी आत्मा की बलि का बकरा बना डाला है। इस प्रकार धन के लिए लोग आत्मा का हनन कर रहे हैं और जानते हैं कि यह हमारे काम आने वाला नहीं। यह कितना अद्भुत बात है।

रही ह ? अरे ! ऐसा देव नहीं, दानव हैं, इससे तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, बल्कि यह तुम्हारे सुख को छीन लेगा। मगर यह बात तुम्हारे गले कहाँ उतर रही है ? आँखो देखते भी जो अनजान बना रहता है, उसका कोई क्या करे ?

(१०)

लक्ष्मी का वाहन जो उल्लू है, सो अज्ञानान्धकार का प्रतीक है। जहाँ लक्ष्मी है अर्थात् धन है, वहाँ अज्ञान है, मूढ़ता है।

(१३)

धन के नाश के तो सकड़ों कारण मौजूद है। चोर चुरा ले जाते है डाकू लूट ले जाते है, बाढ़ बहा ले जाती है, आग नष्ट कर देती है भाई-बन्ध छीन लेते है या दुर्व्यसन में पड़कर उड़ा देते है। ऐसी नाशवान् वस्तु का अभिमान कैसा ? सच तो यह है कि अभिमान करने की तो बात ही दूर धन या अन्य सांसारिक पदार्थ तुम्हारे है ही नहीं। तुम चेतन हो, धन आदि वस्तुएं जड़ है। भला जड़ पदार्थ चेतन के किस प्रकार हो सकते है ?

(१४)

भाइयो ! यह धन दौलत और राज्य लक्ष्मी वेश्या के समान है। यह स्थिर रहने वाली नहीं है। आज
चपल में खड़ी हो जाती है कल दूसरे की

विश्वास करना सिर्फ नादानी के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह आजतक किसी भी राजा महाराजा या सेठ साहूकार का बनकर नहीं रहा है।

(१५)

परोक्ष वस्तु में भ्रम होना सहन किया जा सकता है। मगर आँखों से दिखाई देने वाली वस्तु को भी उलटा समझना कहाँ तक उचित है? तुम हम और सभी प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई भी सम्पत्ति परभव में साथ नहीं जाती सिर्फ पाप और पुण्य ही साथ जाता है। फिर धन और सम्पत्ति के लिए पापों का उपार्जन करना क्या बुद्धिमत्ता है? नहीं यह अविवेक है। मूर्खता है।

(१६)

पैसे से पाप बदल कर पुण्य नहीं बनाया जा सकता। वह तो अपने स्वरूप में ही अपना फल देता है और देता रहेगा।

(१७)

सोना मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर देता है। गरीब और अमीर के बीच फौलादी दीवार खड़ी करने वाली वस्तुओं में सोना भी मुख्य है। सोना मनुष्य को निर्दय बना देता है, घमंडी बना देता है और राक्षस बना देता है। आश्चर्य है कि फिर भी लोग इसे प्यार करते हैं और इसे पाकर अपने आपको धन्य समझते हैं।

जिस सम्पत्ति के लिये तुम रात दिन एक कर रहे हो, अनीति और नीति की परवाह नहीं करते हो, धर्म और अधर्म का विचार नहीं करते उस सम्पत्ति में से क्या-क्या साथ ले कर जाओगे ? मित्रो ! आँख खोलो। तुम्हारे पुरखा चले गये और वे कुछ भी साथ नहीं ले गये। अब क्या तुम साथ ले जा सकोगे नहीं हरगिज नहीं। सब कुछ यहीं पड़ा रह जायगा। संचित किया हुआ माल पराया हो जायगा। तुम भी इस बात को जानते हो और भली भाँति जानते हो। फिर भी भ्रम में पड़े हो ? आश्चर्य है कि फिर भी परलोक को सुधारने की तरफ ध्यान नहीं देते हो। अगर तुम हिन्दू हो तो लकड़ी में डालकर भस्म कर दिए जाओगे और यदि मुसलमान हो तो जमीन में गड्ढा खोद कर दबा दिए जाओगे। बस किया हुआ पुण्य और पाप ही साथ जायगा।

(१९)

जीवन सदा रहने वाला नहीं है और सम्पदा साथ जाने वाली नहीं है। शरीर की आवश्यकताएं परिमित हैं फिर क्यों दुनिया भर की पूँजी अपनी तिजोरी में बन्द करने के लिए पाप करते हो।

(२०)

जो लोग अपने जीवन का अधिक भाग धन कमाने में व्यतीत कर चुके हैं उन्हें निवृत्त हो जाना चाहिए। जो दूसरों

के अंतिम श्वास तक गधे की तरह लदे-लदे फिरना ठीक नहीं, दुनियाँ के धंधे छोड़ो और परमात्मा की प्रीति में बंधे रहो। धर्मोपदेश सुनने का यही सर्वोत्तम सार है।

(२१)

संपत्ति का रोग बड़ा ही भयानक होता है। अन्यान्य रोग तो प्राय एक-एक ही विकार उत्पन्न करते हैं, मगर लक्ष्मी का रोग एक साथ अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है। जिसे धन की बीमारी हो जाती है वह कानों से बहिरा हो जाता है, मुँह से गूंगा हो जाता है, आँखों से अंधा हो जाता है और उसकी तमाम इंद्रियाँ विकार ग्रस्त बन जाती हैं।

(२२)

धन के मद में उन्मत्त बना हुआ मनुष्य गरीबों से बात भी नहीं करता। उनसे बोलने में वह अपनी बेइज्जती समझता है। यही धनवान का गूंगा होना समझना चाहिए। धनी आदमी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के मार्ग को नहीं देखता, नीति और अनीति का पथ उसे नहीं सूझता वह दीन-दुखिया की तरफ दृष्टि भी नहीं डालता यही उसका अंधापन है।

(२३)

संपत्ति की बीमारी मनुष्य को हृदयहीन बना देती है सम्पत्तिशाली के पड़ोसी के बालक भूख से कराह रहे हों तो

वह उनकी परवाह नहीं करता। उनकी दुःख-दर्द भरी आवाज उनके कानों तक नहीं पहुंचती। उसके चित्त पर उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह बहिरापन नहीं तो क्या है?

(२४)

जो लोग श्री-सम्पन्न होने पर भी भगवान के भक्त होते हैं उन्हें यह सम्पद रोग नहीं हो पाता। भक्ति का अमृत रसायन उसके रोगों का शमन करता रहता है। इस प्रकार लक्ष्मी के होने हुए भी जो लक्ष्मी के मद से रहित होते हैं वे इस रोग से बचे रहते हैं।

(२५)

संसार का समस्त वैभव यहीं रह जाता है। यह आज तक किसी के साथ गया नहीं है और जायगा भी नहीं। धर्म ही साथ जाने वाला है। ऐसी स्थिति में वैभव के चक्कर में पड़कर धर्म विस्मरण कर देना उचित नहीं है। शाश्वत को त्याग कर अशाश्वत को अपनाने में बुद्धिमत्ता नहीं है। आत्मा की गुण सम्पत्ति ही उसका शाश्वत वैभव है उसे प्राप्त करने का मार्ग साधुपन है।

(२६)

किसी के हक में बुरा मत करो। तुम्हारा किया तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। बुरे विचारों का और बुरे कार्यों का फल भी अच्छा नहीं हो सकता। जिस धन-दौलत के लिए तुम

पापमय विचार करते हो, वह आत्मा के साथ नही जायगी। वह पाप ही आत्मा के साथ जायगा और तुम्हे पीड़ा पहुंचायगा धन सम्पत्ति और भोग सामग्री तो चार दिन की चाँदनी और उसके बाद अंधेरी रात होगी।

(७)

तुम्हारी यह रईसी और सेठाई किसके सहारे खड़ी है ? बेचारे गरीब और मजदूर दिन रात एक करके तुम्हारी तिजोरियां भर रहे हैं। तुम्हारी रईसी उन्ही के बल पर और उन्ही की मिहनत पर टिकी हुई हैं। कभी कृतज्ञता पूर्वक उनका स्मरण करते हो ? कभी उनके दुःख मे भागीदार बनते हो ? अपने सुख मे उन्हे हिस्सेदार बनाते हो ? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है ? अगर ऐसा नही होता तो समझ लो कि तुम्हारी सेठाई और रईसी लम्बे समय तक नही टिक सकेगी। तुम्हारी स्वार्थ परायणता ही तुम्हारी श्रीमताई को स्वाहा करने का कारण बनेगी। अभी समय है गरीबों, मजदूरों और नौकरों की सुधि लो। उनके दुःखों को दूर करने के लिए हृदय में उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हें अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हें सन्तोष होगा और उनके सन्तोष से तुम सुखी बन रहोगे।

(७८)

व्यापारी का आदर्श दूसरों को कष्ट पहुँचा कर अपनी तिजोरियाँ भरते रहना नही है। गरीबों को चूसना व्यापारी

का कर्तव्य नहीं है। जरूरत के अभाव को दूर करने के लिए व्यापार की प्रथा चलाई गई थी। एक जगह कोई चीज आवश्यकता से अधिक होती है और दूसरी जगह इतनी कम होती है कि उसके अभाव में जनता को भारी कष्ट भुगतना पड़ता है। ऐसी स्थिति में व्यापारी एक जगह से दूसरी जगह वस्तुएँ पहुँचाकर सब को सुविधा कर देता है और उसी में से अपने निर्वाह के लिए उचित मुनाफा ले लेता है।

(७६)

व्यापारी कान खोलकर सुन लें कि ब्लैक मार्केट एक प्रकार की चोरी है और इस तरीके से अगर कमाई करना शीघ्र ही नहीं छोड़ दिया जायगा तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी ही भयंकर हो सकती है। ब्लैक मार्केट करने वाले व्यापारी अपने भविष्य को भूल रहे हैं वे समाज में आर्थिक क्रान्ति का आह्वान कर रहे हैं। कहना चाहिए कि आज अज्ञान वश पूँजीपति ही पूँजीवाद के विरुद्ध वातावरण का निर्माण कर रहे हैं।

(७७)

पैसे वालों को पहले तुम्हारे पास कितना पैसा था और तुम्हारी क्या हालत थी? अब कितना गुना पैसा है? मगर संतोष नहीं। चोर बाजार अब भी तैयार है। कोई भी अनीति और अत्याचार करने से परहेज नहीं। पता नहीं कि उसका फल कितना कटुक भुगतना पड़ेगा।

(३)

गरीबी के अम तोष को दूर करने का तरीका क्या है यह हमारे शास्त्र हजारों वर्ष पहले ही बतला चुके हैं। श्रीमत अपना हृदय उदार बनावें, त्यागशील बने, निर्धनों के प्रति आतरिक स्नेह रक्खें समय पर उनकी सहायता करें, कोई भी व्यवहार ऐसा न करें जिससे उन्हें अपनी हीनता मालूम पडे, सब प्रकार से उन्हें साता पहुँचाने का प्रयत्न करें और धन की ही तरह विद्या बुद्धि और श्रम का महत्व समझें तो बिगडती हुई परिस्थिति में कुछ सुधार हो सकता है।

(३२)

अन्याय का पैसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा कदाचित रह गया तो तीसरी पीढी मे दिवालिया बना ही देगा। ईमानदारी का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और बेईमानी की मोहर भी पैसे के बराबर नहीं है।

(३३)

नीति का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और अनीति का भंडार भी अनर्थों का भंडार है।

(३४)

अनीति करके कोई सुख नहीं पा सकता। अनीति द्वारा उपार्जन किया हुआ द्रव्य तो चला ही जाता है, साथ में

जायगी। गरीबों की हाय में वह आग है कि श्रीमन्तों की बड़ी बड़ी हवेलियाँ भी उससे भस्म हो जायगी।

(३८)

आज आपके पास पहले से धन बढ़ा ही है घटा नहीं है। मगर देखना यह है कि आपकी उदारता उसी परिमाण में बढ़ी है अथवा नहीं। अगर आपकी उदारता नहीं बढ़ी तो धन के बढ़ने से आपका क्या हित हुआ ? धन के साथ आपकी ममता बढ़ गई इसका अर्थ यह हुआ कि आपका पाप बढ़ गया है। उस धन की सार–सम्भाल करने की चिन्ता बढ़ गई व्याकुलता बढ़ गई और आरम्भ–समारम्भ बढ़ गया। यह सब पाप का ही बढ़ना है। ऐसी सम्पत्ति से आपका कुछ भी हित नहीं होने वाला है बल्कि अहित ही है।

(३९)

तू चाहता है मैं अधिक सम्पत्तिशाली होकर सुखी बन जाऊंगा। परन्तु यह तो देख ले कि जिनके पास अधिक सम्पत्ति है वे क्या सुखी हैं ? नहीं। वे भी तो सुखी नहीं हैं। वे भी तेरी ही तरह तृष्णा की आग में जल रहे हैं। ऐसी अवस्था में तू कैसे सुखी हो जायगा ? सुख का असली साधन तो संतोष ही है। अतएव हे भव्य ! अगर तू वास्तव में ही सुखी बनना चाहता है तो संतोष धारण कर।

(४०)

धर्म साधना में धन की तृष्णा बहुत बाधक होती है। परन्तु कभी यह भी सोचते हो कि आखिर इतने धन का क्या करोगे? क्या पाव भर अन्न के बदले बहुमूल्य मोती खाना चाहते हो? सेर पाव भर अनाज, थोड़ी सी जगह और थोड़े आवश्यक वस्त्र तुम्हें चाहिए और उसके बदले तुम दुनिया भर की दौलत को हथियाने के लिए आकाश पाताल एक कर रहे हो? सोचते क्यों नहीं कि यह सब क्या है! अपना यह उत्तम जीवन इस जड़ और विनश्वर सम्पत्ति के पीछे क्यों अकारथ खो रहे हो? धन की मर्यादा करना। मर्यादा कर लोगे तो सन्तोष आ जायगा। सन्तोष आ जायगा तो व्याकुलता मिट जायगी। निराकुलता का अपूर्व सुख प्राप्त होगा और तब भावना धर्म की ओर जायगी।

(४१)

तृष्णा तो एक तरह की अग्नि है, जो धन-सम्पत्ति के ईंधन से बुझती नहीं बढ़ती जाती है।

(४२)

सम्पत्ति चित्त में शान्ति का स्रोत नहीं, उल्टी व्याकुलता की आग सुलगाती है। ऐसी सम्पत्ति के लिए क्यों आत्मा का अहित करते हो?

(४३)

जिनके बाप-दादे गरीब थे, भरपेट रोटियां भी नहीं पाते थे, ऐसे लोग लखपति होकर भी भगवान का भजन नहीं करते! पुद् गलों के लिए चिंतामणि के सदृश मानव-जीवन को बर्बाद कर रहे हैं। कोई आदमी कौवा को उड़ाने के लिए हाथ का हीरा फेंक दे तो मूर्ख समझा जाता है मगर धन-दौलत के लिए जीवन को गँवा देना क्या उससे भी बड़ी मूर्खता नहीं है?

(४४)

तुम गृहस्थ हो तो मैं नहीं कहता कि तुम पैसा मत कमाओ किन्तु इस प्रकार नैतिकता से विरुद्ध व्यवहार करके मत कमाओ। पैसे के लिए अपना धर्म मत बेचो। पैसा जीवन के लिए है, जीवन पैसे के लिए नहीं है। धन की तृष्णा से अंध होकर न्याय अन्याय को मत भूलो। जिस धन के लिए तुम धर्म को भूल रहे हो वह साथ जानेवाला नहीं है। हाँ धनोपार्जन के लिए तुम जो पाप करोगे वह अवश्य ही तुम्हारे साथ जायगा किन्तु बाँधा हुआ पाप तुम्हें भव-भव में दुःख देगा।

(४५)

जीवन और धन में से जीवन ही महत्वपूर्ण वस्तु है। धन जीवन के लिए है, जीवन धन के लिए नहीं है। मानो कि जीवन को सुखमय बनाने के लिए गृहस्थ अवस्था में धन की

जरूरत होती है पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि तुम धन के लिए अपने सारे जीवन को और समस्त सद्‌गुणों को ही निछावर कर दो।

(४६)

चाहते हो कि हम धन सम्पन्न बन जाय, पुत्र-पौत्र आदि परिवार वाले बने रहे, सब प्रकार की सुख-सामग्री हमें प्राप्त हो, मगर धर्म की उपेक्षा करते हो। तो यह कैसे हो सकता है? नीम का रस पीकर मुँह मीठा करने की इच्छा किस प्रकार सफल हो सकती है? तुम धर्म का रक्षण और पालन करोगे तो धर्म तुम्हारा रक्षण और पालन करेगा धर्म से ही सब सुखों की प्राप्ति होगी।

(४७)

धर्म की उपेक्षा करके धन की आराधना करना वैसा ही मूर्खता पूर्ण है जैसे किसी वृक्ष के मधुर फल पाने के लिए उसके मूल में पानी न सींच कर पत्तों पर पानी छिड़कना!

(४८)

भाई! समझ ले तेरे पास धन है और तू चाहे तो उसके द्वारा स्वर्ग भी खरीद सकता है और नरक भी खरीद सकता है दोनों में से क्या चाहता है? स्वर्ग चाहता है तो धन को छाती से चिपकाये काम नहीं चलेगा। उसे दोनों हाथों से खर्च करना होगा। स्वर्ग का मोल चुकाना होगा। गरीबों को दान

पडेगा धम के कामो म व्यय करना होगा। यदि नरक खरीदना है तो तिजोरियो म भर रख, जमीन म गाड ले। धन जमीन मे गाडने के लिए जो गड्हा बनाता है, समझले कि नरक में जाने का रास्ता बना रहा है।

(४६)

भाइया! पापी जीव मर जायगा लाखो–करोडो की सम्पत्ति छोड जायगा, पर तु उस सम्पत्ति के उपाजन म जो पाप किये है उन्हे साथ अवश्य ले जायगा। उन पापो का फल भोगने क लिए वह नरक कुड में गिरेगा वहा सारी अकड निकल जायगी।

(५०)

जिस धन से देश जाति समाज और धर्म का भला न हुआ, वह धन क्या है। ऐसे धनवान का जीवन भी वृथा है। वह उस धन का मालिक नहा गुलाम है। उसकी जिन्दगी किसी क काम नही आई और उसका धन भी किसी के काम नही आया। तब वह किस मतलब का है?

(५१)

वह बडा आदमी किस काम का जो हर्ष के अवसर पर स्वय ही खा–पी लेता है। स्वय ही विनोद कर लेता हैं। और मौज उडा लेता है। सच्चा बडा आदमी वही है जो

अपने हृप मे दूसरा का सम्मिलित करता है। जा मुख के समय म दीन-दुखियों का स्मरण करता है।

(५२)

आपका वडप्पन किस काम का है ? घाडे की पूछ बडी होती है पर वह अपनी ही मक्खियाँ उडाती है। अगर आपने अपने पडोसियों का भला नही किया ता आपके वडप्पन का क्या महत्व है ? जगल के पेड की तरह पदा हुए जिन्दार हु और नष्ट हो गये, ता किस काम के ? आपने जीवन का क्या ल भ लिया ?

(५३)

अगर इस जन्म में लक्ष्मी का सदुपयाग न करगा ता फिर कब करगा ? यह लक्ष्मी या ता तेरे जाते जी ही तुझ छाडकर चली जायगी अथवा किसी समय तू इस छोडकर जायगा। जब यह निश्चित है, और इसमें तनिक भी सदेह नही है ता फिर क्या सोच-विचार करता हू।

(५४)

धन का भडार भर लेने स भी धन्य नही हागा, प्रतिष्ठा और परिवार बढा लेने मे भी जावन सफल नही बनगा। सुकृत करने में ही जावन की साथकता ह।

(४८)

धन प्राप्त करने की सार्थकता इसी में है कि वह परोपकार के काम में आये। जो धन परोपकार के काम में नहीं आता वह पुण्य का कारण न बनकर पाप का ही कारण बनता है। उससे आत्मा का पतन होता है।

(४९)

धनवानों का अनुचित आदर मिलने के कारण समाज में धन की पूजा बढ़ती जाती है और गुणों की प्रतिष्ठा घटती जाती है।

(५०)

धनी था तब वही था और निर्धन हो गया तो भी वही है। उसके मनुष्यत्व में कुछ अन्तर नहीं पड़ गया है। फिर क्या लोगों की दृष्टि में इतना परिवर्तन हो जाता है? इससे तो यही प्रकट होता है कि वास्तव में यह अर्थी दुनिया मनुष्य की कद्र नहीं करती मानवीय सद्गुणों का मूल्य नहीं जानती इसे एक ही वस्तु का मूल्य मालूम है और वह धन है और स्वार्थ का मूल्य है। जब देखता है कि इनसे कोई स्वार्थ सिद्ध न होगा तो एकदम आँख बदल लेता है। ऐसे स्वार्थमय संसार पर जिनका अनुराग है उन्हें क्या कहा जाय।

(५८)

भाइयो! मनुष्य का असली मूल्य पैसे से नहीं है। किसी के व्यक्तित्व को पैसे से मत देखो। यह देखो कि उसमें कितनी उदारता है, कितनी दयालुता है, कितनी सरलता है और कितनी क्षमा है? जिसके जीवन में समभाव की जागृति जितनी अधिक हो, वह उतना ही अधिक उच्चकोटि का व्यक्ति है।

(५९)

लोग पैसे का जितना आदर करते हैं उतना अगर मानवीय सद्गुणों का आदर करें तो संसार स्वर्ग बन जाय।

(६०)

सम्पत्ति के अभाव से कोई दरिद्र नहीं होता किन्तु जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वही वास्तव में दरिद्र है भले ही वह करोड़पति क्यों न हो?

(६१)

जिस वैभव के लिए मनुष्य इतना गिर जाता है, जिस वैभव के पीछे मनुष्य मनुष्यता को भी गँवा बैठता है और राक्षस बन जाता है उस वैभव को धिक्कार! लाख बार धिक्कार है!

(६२)

जिसने धर्म रूपी धन का संचय किया है, वही करोड़पति है। उसके समान कोई करोड़पति नहीं है। आगे धन साथ नहीं चलेगा धर्म ही चलेगा।

(६३)

धनी जिस धन से अपनी प्रतिष्ठा समझता है, जिसमें अपना गौरव मानता है, समझदार लोग उससे जीवन का अधःपतन देखते हैं।

(६४)

अज्ञान मनुष्य जिसे अपने जीवन का सर्वस्व समझता है, जिस सम्पत्ति के लिए धर्म और नीति का भी त्याग करते संकोच नहीं करता, यहाँ तक कि मरने को भी तैयार हो जाता है, ज्ञानी उसी सम्पत्ति को तुच्छ और निस्सार समझते हैं। ऐसी सम्पत्ति का जो भी मूल्य है, वह केवल मिथ्या कल्पना के ही क्षेत्र में है। वास्तविकता के क्षेत्र में उसकी कोई कीमत नहीं है।

(६५)

यदि आपकी मानसिक स्थिति ऐसी ऊँची हो गई है कि आप धन के लिए धर्म का नहीं त्याग सकते और धन आपको धूल के समान प्रतीत होने लगा है तो आप सम्यग्दृष्टि हैं, शुक्लपक्षी हैं।

(६६)

गरीब अगर अपनी गरीबी में सन्तोष मानकर चलता है और जिस किसी उपाय से धनवान् बनने की लालसा नहीं रखता तो वह धनवान् से तनिक भी कम भाग्यशाली नहीं है।

(६७)

प्राचीन काल में योग्यता का सत्कार होता था। आज धन का ही सत्कार होता है। देश का यह पतन क्या सामान्य पतन है?

(६८)

आज धन के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण और धन की ही प्रतिष्ठा मिलना देखकर लोग विवाह जैसे अवसरों पर भी धन को ही महत्त्व देते हैं। कन्या का पिता चाहता है कि मुझे लखपति जंवाई मिले और लड़के का पिता चाहता है कि मुझे कोई ऐसा सम्बन्धी मिले जो धन से मेरा घर भर दे? इस तरह दोनों की नजर धन पर ही होती है। इससे बेचारे लड़कों का कितना पतन होता है इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। योग्य से योग्य लड़के कुंवारे फिरते हैं और धनवान बूढ़े लड़कियाँ खरीद कर अपने बुढ़ापे को सजाते हैं? जिस देश की और जिस जाति की ऐसी दशा हो उसका उद्धार कैसे होगा?

(६९)

माता पिता को सोचना चाहिए कि एक मात्र धन ही लड़की के जीवन को सुखी और उन्नत नहीं बना सकता। शिक्षा, सुसंस्कार, धार्मिकता और नम्रता आदि सद्गुण जिसमें विद्यमान हों विचारवान् माता पिता उसी वर को पसंद करते हैं। वे यह ध्यान में रखते हैं कि हम धन के साथ

अपनी कन्या का विवाह नहीं करना है, बल्कि मनुष्य के साथ करना है और इसी लिए वे धन से किसी को योग्य नहीं समझ लेते, बल्कि सद्गुणों में ही योग्यता की जाँच करते हैं।

(७०)

पाप से वह को जो धन मिलता है उसकी क्या कीमत है ? वह धन तो उल्टा अनर्थ का कारण होता है। वह ज्यादा हो गया और धर्म धन न हुआ तो मनुष्य क्या करेगा। मस्ती में पड़ा रहेगा और ब्रान्डी पीएगा और अण्डे चखेगा। इस प्रकार पौद्गलिक धन आत्मा को नरक में ले जाने का साधन है। इसके विपरीत है सद्गुरु के द्वारा प्रदान किया हुआ धर्म धन जो इस लोक को भी सुधारता है और परलोक को भी सुधारता है।

(७१)

भाइयो ! धन का भंडार या भरी हुई तिजारि[illegible] छोड़ जाने से तुम स्मरणीय नहीं बनोगे। उस धन का पाप तुम्हारे उत्तराधिकारी अगर अनाचारी हो गये तो लोग तु[illegible] भी कोसेंगे। इसी प्रकार सात मंजिला महल बना लेने से [illegible] तुम गणना के योग्य नहीं बन सकोगे। भूकम्प का एक ही धक[illegible] उसे भूमिशायी बना देगा। नहीं तो काल उसे धरती में मि[illegible] देगा। पुत्र-पौत्र आदि का बड़ा परिवार भी तुम्हारा जी[illegible] साथी नहीं बना सकेगा। संसार की कोई वस्तु तुम्हा[illegible]

सच्चा स्मारक नहीं बन सकती। अगर तुम चाहते हो कि संसार तुम्हारा नाम ले, तुम स्मरणीय समय जाओ तो शुद्ध चेतना प्राप्त करो। शुद्ध चेतना अर्थात विवेक या सम्यग्दर्शन पाकर तुम्हारा शक्ति तुम्हें समीचीन पथ की ओर ले जायगी और आखिर गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाओगे।

(७२)

रेंहट की घडियाँ पानी से भर जाती हैं और फिर थोड़ी-सी देर में ही खाली हो जाती हैं। खाली होकर वह फिर भर जाती है। इस प्रकार भरने और खाली होने का क्रम चालू ही रहता है। धन का भी यही दशा है। वह कभी आता है और कभी चला भी जाता है। चला जाता है तो आ भी जाता है। आज जो दरिद्र है वह कल ही सम्पत्तिशाली बन सकता है और आज जो सम्पत्तिशाली है वही कल दाना-दाना के लिए मुहताज हो सकता है। अतएव धनवानों का कर्तव्य है कि जब उनकी दशा अनुकूल हो तब वे धन का दुरुपयोग न करें। गरीबों को सताएं नहीं, बल्कि अपने धन से उनकी सहायता करें।

(७३)

कोई भोला मनुष्य आपके ऊपर विश्वास करता है। आप चाहें तो सहज ही उसे ठग सकते हैं। मगर आप उसे ठगना उचित नहीं समझते और सोचते हैं कि— 'अरे आत्मा' क्या सोना-चाँदी आदि सम्पत्ति तुझे

जाता है। इस दुनियाँ की चीजें तो इसी दुनियाँ में रह जायगी फूटी कौडी भी साथ जाने वाली नही है। फिर वृथा ही इस सम्पत्ति के लिए क्या पाप कर्म करता है? क्यो अपनी आत्मा को पाप से कलुषित बनाता है? जब पाप कर्मों का उदय होगा तब पाप से उपार्जित की हुई सम्पत्ति सुख प्रदान नही कर सकेगी वह उलटा दुःख का ही कारण बनेगी।' ऐसा सोचने वाला अपनी दया करता है।

(७४)

पुण्य का उपार्जन करोगे तो आगामी जीवन में भी सुख पाओगे। छल कपट से धन कमाओगे तो पाप ही पल्ले पडेगा। धन साथ नही जायगा, पाप गले पड जायगा। अत निष्कपट बनो सरल बनो।

(७५)

धन सम्पत्ति को साथ ले जाने का एक ही उपाय है और वह यह कि उसका दान कर दो, उसे परोपकार में लगा दो सदान करदो।

(७६)

बहुत लोग अपने धन की रक्षा करने में बहुत कुशल होते हैं। मगर खेद है कि वे यह नही समझते कि उनका वास्तविक धन क्या है? रुपया पैसा, महल आदि को तुमने धन समझा है परन्तु वह तुम्हारा सच्चा धन नहीं है। वह

पौद्गलिक धन तुम चोरन का धन बन हो सकता है। तुम्हारा असली धन चरित्र है। अतः तुम्हें चरित्र रूपी धन की रक्षा करनी चाहिए।

(७७)

मालदार कोई भी व्यक्ति लाखों और करोड़ों की सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है। किन्तु पुण्य के बिना वह भोग नहीं सकता। धन में किसान अड़ंगा खड़ा कर देते हैं। वह न स्वयं खाता है और न दूसरा आदि को खाने देता है। इसी प्रकार कृपण जन न खुद खा सकता है और न दूसरा को खाने देता है। वह धन का पहरेदार मात्र है। उसकी रखवाली करना ही उसका काम है।

(७८)

कुछ लोग माला जपते है और उसमें भावना करते हैं हे भगवान मेरे गाँव के ग्राहक मेरी ही दुकान पर आ जाएँ। भगवान ग्राहकों को घर कर तेरे घर लाएगा! तूने भगवान् को अपना नौकर समझ रखा है! अरे लोभी सब ग्राहक तेरी दुकान पर आ जाएगें तो दूसरों के बाल-बच्चे क्या खाएगें?

(७९)

लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए पुण्य की आवश्यकता है। पुण्य का उपार्जन भगवान की स्तुति और भक्ति करने से होता

है। जो भगवान की भक्ति करेगा लक्ष्मी उसकी दासी बन जाएगी। जब परछाईं से विमुख होकर आप चलते हैं तो परछाईं आपका पीछा करती है, उसी प्रकार आप लक्ष्मी से विमुख होकर भगवद् भक्ति करेंगे तो लक्ष्मी आपका पीछा करेगी। इसके विरुद्ध जैसे परछाईं को पकड़ने के लिए दौड़ने वाला व्यक्ति कभी अपनी परछाईं को नहीं पा सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी-लक्ष्मी करने वाला और उसके पीछे पीछे मारा-मारा फिरने वाला पुरुष लक्ष्मी नहीं पा सकता।

(८०)

आखिर सभी को एक दिन मरना है फिर धन के लिए यह अनीति क्यों की जानी चाहिये ?

(८१)

आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान दर्शन आदि भाव लक्ष्मी आत्मिक सम्पत्ति है। वह सदैव आत्मा में रहती है। उसे बाहर से लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे प्राप्त करने के लिए सिर्फ इतना ही करना पड़ता है कि आत्मा पर पड़े पर्दों को प्रयत्न करके हटा दिया जाय। यह सम्पत्ति एकान्त सुख देनेवाली है और सदैव सुख देनेवाली है। परलोक में भी वह साथ देती है। वह अनन्त और अक्षय आनन्द प्रदान करने वाला है।

—: विषय-भोग :—

(१)

संसार में जितने भी अनर्थ हो रहे हैं, उन सब के मूल में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में भोगों की अभिलाषा ही है। सांसारिक भोग ही सब अनर्थों की खान है।

(२)

विषय भोग और उनके साधनों की आकांक्षा ही असल में दुख है और उस आकांक्षा का त्याग सुख है। ज्यों-ज्यों जीवन निर्वासनामय बनता जायगा त्यों-त्यों सुख की वृद्धि होगी। शान्ति निराकुलता में है, व्याकुलता में नहीं है।

(३)

कुत्ता समझता है कि वह जिस हड्डी को चूस रहा है उसमें से खून आ रहा है। उस बेचारे को क्या पता कि जिस खून को वह हड्डी में समझ रहा है वह तो उसका अपना ही है? इसी भांति विषयासक्त जीव भोगों में सुख की कल्पना करता है, जबकि सुख आत्मा में ही है। मुर्दे के मुंह में षटरस भोजन डाल दो क्या वह उसका रसास्वादन करके सुख प्राप्त कर सकेगा? कदापि नहीं।

(४)

असल बात यह है कि अधिकांश लोग वास्तविक सुख के रूप को ही नहीं समझते हैं। जैसे कुत्ता प्राप्त हड्डी को चाबता है। हड्डी को चबाने से उसके मसूढ़ों में से रुधिर निकलता है और वह उस रुधिर को हड्डी में से निकलने वाला समझ कर चाटता और आनन्द मनाता है। और वह यह समझता है कि यह स्वाद हड्डी में से आ रहा है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव समझ रहे हैं कि सुख भोगों में है। परन्तु उनकी धारणा मिथ्या है सुख पुद्गल का गुण ही नहीं है। वह तो आत्मा का गुण है और आत्मा में ही रहता है। आत्मा के सुख गुण के विकार को सुखाभास को लोग पुद्गल जनित सुख समझते हैं

(५)

भाइयो! आँखों में खुजली चलने पर मनुष्य खुजाल लेता है और कोई मनाई करता है तो भी नहीं मानता। उस समय खुजालने में ही उसे सुख मिलता है। किन्तु बाद में जब जलन होती है तो पछताता है। इसी प्रकार यह भोग थोड़ी देर मजा देते हैं किन्तु बाद में बुरी तरह पछताना पड़ता है।

(६)

कलाकंद में संखिया डाल दिया गया हो तो खानेवाले को पहले तो आनंद आता है किन्तु थोड़ी ही देर बाद सारे

शरीर में ऐंठन आरम्भ होता है और प्राणों से हाथ धोना पडता है। यही बात इन्द्रियों के भावों के सम्बन्ध में है।

(७)

भोगों में उतना ही सुख है जितना तलवार की धार पर लगे हुए शहद को जीभ से चाटने में होता है। क्षण भर मिठास मालूम होती है परन्तु जीभ कटने के कारण लम्बे समय तक दुख उठाना पडता है। काम सेवन में भी इस संसार में दुख ही दुख होते हैं।

(८)

विष और विषयों में अन्तर है तो यही कि विष एक बार मारता है और विषय अनेक बार मारते हैं। कामभोगों की अधिक विपाकता प्रकट करने के लिए शास्त्रकार कहते हैं कि काम सर्प के समान है। जैसे सर्प भयंकर होता है और उससे दूर रहने में ही कल्याण है इसी प्रकार विषय भी आत्मा के लिये भयंकर है और उनसे दूर रहने में ही कल्याण है।

(९)

जैसे मन भर का पत्थर गले में बाँधकर डुबकी लगाने वाला पुरुष तल भाग में जाकर अपने प्राण गँवाता है, उसी प्रकार विषय भोगों की गठरी अपने सिर पर लादने वाला मनुष्य पाताल लोक की ओर ही प्रयाण करता है।

(१०)

यह जीव भोगों को नहीं भोगता है परन्तु भोग ही जीव का भोग लेते हैं। भोगों के लिए अपना जीवन निछावर करने वाले भोग नहीं भोगते, वास्तव में भोग ही उसके जीवन को भोगकर समाप्त कर देते हैं। जीव सोचता है कि मैं पांच वर्ष में हजारपति से लखपति बन गया मगर धन कहता है मैंने इसके अनमोल जीवन के पांच वर्ष खत्म कर दिये।

(११)

संसार में जितने भी संयोग हैं, वे सब दुःख उत्पन्न करने वाले हैं। थोड़े से समय का संसार का सुख बहुत लम्बे समय तक दुःख देता है और वह सुख भी दुःखों से मिश्रित है, जैसे जहर मिला हुआ अमृत। संसार के सुख को ज्ञानी जन इसी लिए सुख नहीं मानते।

(१२)

विषय भोगों से मिलने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं सुखाभास है। सच्चा सुख तो तृप्ति में है और विषयभोगों का सर्वथा त्याग करके एकान्त निराकुल अवस्था में ही तृप्ति हो सकती है। अतएव भोगजन्य सुख को सुख समझना कोरा भ्रम है, दुःखों को निमन्त्रण देना है।

(१३)

जीव का स्वरूप अनन्त आनन्द है। मगर जीव को अपने स्वरूप का वास्तविक बोध नहीं है। अतएव वह विषय

जन्य आनन्द को ही अपना ध्येय मान लेता है और उसी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वास्तव में विषय सुख, सुख नहीं सुखाभास है। वह सुख सरीखा प्रतीत होता है। मोही जीव इसी सुखाभास के प्रलोभन में फँस कर अपने जीवन को वृथा गँवा देता है।

(१४)

भाइयो! संसार के यह सब सुख, दुःख के जनक हैं। जो सुख दुःखों के जनक हों वे वास्तव में दुःख रूप ही हैं। जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं सब का परिणाम एक मात्र दुःख है।

(१५)

जो जीव विषय भोगों में आसक्त होकर भविष्य की परलोक की उपेक्षा करते हैं वे भी मृत्यु के समय और पश्चात् घोर संकट में पड़ते हैं।

(१६)

यह भोग रोग के भंडार है। चेतना को मूढ़ बना देने वाले, आत्मा का पतित बनाने वाले जीव को अभिशापमय बना देने वाले और समस्त आपदाओं को लाने वाले हैं। भोगों में आसक्त हुआ जीव अपने कर्तव्य को भूल जाता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह अपनी आत्मा की ओर झाँक कर भी नहीं देख सकता।

(१७)

भोग चेतना को जडवत बना देते हैं। भोगो का सयोग भी दुखदायी है और उनका वियोग होने पर भी शोक और पश्चात्ताप होता है। भोगो की बदौलत भयानक व्याधियाँ चिपट जाती है। विश्वास न होतो अस्पताल मे जाकर पूछ आओ। वहा कितने ही लोग भोग के फलस्वरूप नरक-सी यन्त्रणाएँ भोगते है। कई लोग प्रकट रूप से कुछ कह नही सकते मगर एकान्त मे बैठ कर रोते है।

(१८)

आग मे घी डाला जायगा तो वह शान्त नहीं होगी। उसकी ज्वालाए अधिकाधिक प्रचण्ड ही होती जायगी इसी प्रकार भोग भोगने से अन्तःकरण में तृप्ति नहीं हो सकती, शान्ति नही हो सकती बल्कि अशान्ति की ही वृद्धि होगी। फिर शान्ति पाने की इच्छा से अशान्ति की राह पर क्यो चलना चाहिए? धूप से घबरा कर आग की लपटो में कूदना अगर मूर्खता है तो सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए भोगो के मार्ग पर चलना भी मूर्खता ही है।

(१९)

भोग का स्वभाव ही अतृप्ति असन्तोष बढाता है अतएव उससे सुख कस आ सकती है। कोई सोचे कि मैं जब सम्राट या बादशाह बन जाऊगा तो सब भोग-भोग कर तृप्ति सपा

दित कर लूगा किंतु अर भाले जीव बादशाह के दिल से तो पूछ देख कि उसका क्या हाल है। उसे सन्तुष्टि मिल सकी है या नहीं ?

(२०)

ससार का ऐसा कौन–सा पुद्गल है जिसका उपभोग तूने नहीं किया है ? विश्व के कण–कण को अनन्त–अनन्त बार अनन्त–अनन्त रूप से तूने भोग लिया है। अब क्या शेष रह गया भोगने का ? यदि अब तक तुझे तृप्ति नहीं हुई तो क्या अब इस जीवन मे भोगने से तृप्ति हो जायगी ? रे अज्ञानी जीव ! अपने मोह का त्याग कर। क्या मन का नचाया नाचता है ? क्या इन्द्रियो का गुलाम बन कर अपने भविष्य को सकट-मय बनाता है ? यह विषय क्षण भर विकृत आनन्द देंगे तो चिरकाल पर्यन्त घोर यातनाओ के कारण बन जाएँगे।

(२१)

भोगोपभोगो मे सुख होता तो विवेकशील पुरुष इनका त्याग करके एकान्त वनवास के काटो को क्या स्वेच्छा पूर्वक सहन करते ? वस्तुत किसी भी पौद्गलिक पदार्थ मे सुख नहीं है और न वह आत्मा को सुखी बना सकता है, क्योंकि सुख आत्मा का ही स्वाभाविक धर्म है। जब आत्मा पर पदार्थों से विमुख होकर अपनी ओर उन्मुख होता है और अपने ही सहज स्वरूप में रमण करता है तब आत्मा का सुख हो जाता है।

(२)

आज किसी अंधेरे कमरे में बंद कर दिया जाय और दरवाजा बंद हो तो पांच मिनिट भी नहीं रहा जाता मगर नौ मास तक गर्भावास कैसे किया ? आज उन सब दुःखों को भूल गये हो इसी से विषय वासना में फँस कर अपने जीवन को सफल समझ रहे हो परन्तु याद रखना यह पुनः पुनः गर्भ में उत्पन्न होने का मार्ग है। जिस रास्ते से गये हो वह बहुत दुःखों से परिपूर्ण है। उसी पर क्या फिर जाते हैं ?

(३)

भाइयों ! विषय वासना को दुःख थोड़ा मत समझो इसके पीछे आज हजारों लाखों नहीं करोड़ों जीवन बर्बाद हो रहे हैं। बड़े-बड़े प्रतिभाशाली लोग इस चक्कर में पड़कर मूर्ख बन जाते हैं। कितने ही उदीयमान नक्षत्रों का विषय वासना ने उन्नति होने से पहले ही अन्त कर दिया है। विषय वासना वह पिशाचिनी है कि न जाने कितनों को अपना भक्ष्य बना चुकी है।

(४)

विषयों में हलाहल विष भरा है। ज्यादा सिनेमा देखेगा तो आंखों की रोशनी बन्द हो जायगी और ज्यादा मनोज्ञ गंध सूँघेगा तो नाक बंद हो जायगी। ज्यादा मीठा खाएगा तो बीमारियाँ घर बनाएगी। अधिक स्पर्श सुख को

अनुभव करता था विश्व, विश्वास और मूर्ति होकर कह,
से ही कान के नाम न कहा जायगा। इसलिए आप की प्रणाम
लगा कर इस प्राणी का राग दूर किए बिना न रहे। बात
नहीं है।

(३४)

ज्ञानी पुरुष का अ. का कहना है अन्य पुरातन मानी
है कि इसलिए विश्व का अपना करना कल्पित कहा है।
कारण है क्योंकि उसमें उसी एक सब का ज्ञान होता है,
जिसमें विश्व मान लिया गया है। परन्तु यह भाषा का विश्व
का अनन्त अंश को विकृत करता है। इसके प्रथम में समस्त
और अनन्त काल लोक का विचार करना पड़ता है। अतएव
यह भाव-लिए स्वरूप विश्व की कल्पना का रचना अधिक
मान्य है।

(५१)

भोगाभोगों का मार्ग बड़ा ही चक्करदार है जिसमें
है और बढ़ कर सब विचार सब जान जाता है। इस मार्ग पर
आरम्भ अनादि काल से चल रहा है मगर उसमें शांति मिली
है न तृप्ति मिली है, न सुख मिला है न संतोष मिला है।
इतना ही नहीं उलटी अशांति अतृप्ति दुःख सब असन्तोष
का ही प्राप्ति हुई है। इस भोगाभोगों ने आत्मा को
का नष्ट कर दिया है पुरुष का निरा दिया है
मानव जा

से आत्मा को नहीं प्राप्त हो रहा है। संसारी जीव इनकी तृष्णा में पड़ कर अपने ज्योतिर्मय अनन्त प्रकाशमय स्वरूप को भूल गया।

(७)

जबतक आत्मा अपने गूढ़ स्वभाव से अनभिज्ञ है, तभी तक वह बाह्य पदार्थों में सुख समझता है। जब आत्मा के असीम स्वाभाविक सुख का अक्षय खजाना उसे नजर आता है तो बाह्य सुख उसे उपहासास्पद जान पड़ता है। उसे भोगना उसे नादान छोकरों का खेल सा जान पड़ता है।

(८)

राग और द्वेष रूपी विकारों को जीतना ही साधना है। जितने जितने अंशों में इन विकारों पर विजय प्राप्त होती जाती है, उतने ही उतने अंशों में साधना पकती जाती है, और जब पूरी तरह पक जाती है अर्थात् पूर्णता पर पहुंच जाती है तो पूर्ण समभाव प्रकाशित हो जाता है।

(९)

मनुष्य जब आत्मा के परम चिन्मय स्वरूपको पहचान लेता है तब उसे स्वभावतः विषयों से विरक्ति हो जाती है। अतएव विषय वासना से बचने के लिए आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सच्चा उपाय है। निरन्तर भावना और अभ्यास से ही विषयों की वासना नष्ट की जा सकती है।

(३०)

जब कोई मनुष्य जान लेता है कि यह विषधर सर्प है तो क्या उसमें सुख मानता है? उसे समीप भी रहने दे सकता है? कदापि नहीं। सर्प का भान होते ही वह दूर भाग खड़ा होता है। यही सच्चा जानना है। इसी प्रकार जिसने संसार के भोगोपभोगों का असली स्वरूप समझ लिया है वह किस प्रकार उन्हें ग्रहण कर सकता है।

(३१)

भोगलोलुप लोग बाद में कितना ही पश्चात्ताप क्यों न करें, अपने कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं पा सकते। अतएव हे मनुष्य! तूने अन्य सब प्राणियों से विशिष्ट बुद्धि पाई है, तुझे विवेक भी प्राप्त है, तू अपने भविष्य के विषय में विचार कर। सोच समझ कर कदम उठा। फूंक-फूंक कर चल। आँखें रहते अंधा क्यों बनता है? जान बूझ कर क्या आग में पड़ता है?

(३२)

भाइयो! संसार में बंधन तो अनेक हैं किन्तु विषय भोग के बंधन के समान और कोई बंधन नहीं है। जिसने इस बंधन को तोड़ कर फेंक दिया है, समझना उसने सभी बंधनों को तोड़ फेंकने की तैयारी कर ली है। अन्य बंधनों से मुक्ति पाना उसके लिए सरल हो जाता है। अतएव अगर आत्मा का परम कल्याण चाहते हो तो, विषय-वासना की जड़ को उखाड़ कर फेंकने का प्रयत्न करो।

(३३)

भोग का रोग बडा व्यापक है। इसमें उडती चिडियाँ भी फस जाती ह। अतएव भोग के रोग से बचने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए और कभी चित्त का गृद्ध नहीं होने दना चाहिये।

(३४)

पापा म बचन का सब से उत्तम उपाय अपनी इन्द्रियों पर काबू करना है। जसे कछुआ अपने अगो और उपागा को समुचित कर लता है ता उसक ऊपर शत्रु का प्रहार सफल नही होता इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी इन्द्रियो का वश म कर लेता है, उस पर पापों का जोर नही चलता। जो कछुवे की भाँति इन्द्रिया को गोपन करके रखता है, अन्तःकरणा म बुरे विचार नहीं आने देता और दूसरा का दिल दुखाने वाली भाषा का भी प्रयोग नही करता वह आत्मा को मोक्ष म ले जायगा।

(३५)

इन्द्रिया पर काबू रखने का अर्थ यह नहीं है कि कानों से सुनना बन्द कर लो, आँखो से देखना बन्द कर दो आँखें फोड लो या उन पर पट्टी बाधे फिरो, नाक से सूघना बन्द कर दो, जीभ से स्वाद लेना छोड दो और स्पर्शनेन्द्रिय से किसी भी चीज को छूना त्याग दो। नही, शास्त्रकारों का आशय यह

नहीं है। ऐसा करने से जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। इन्द्रियों पर काबू रखने का अर्थ यह है कि मनोज्ञ अर्थात् रुचिकर समझे जाने वाले पदार्थों पर राग मत करो और अमनोज्ञ अर्थात् अरुचिकर समझी जाने वाली वस्तुओं पर द्वेष भाव धारण मत करो।

(२६)

विषय परित्याग का अर्थ यह नहीं है कि आप किसी भी वस्तु का स्पर्श न करें, किसी चीज को आँख से न देखें, नाक बंद कर रखें, आँखों पर पट्टी बाँध कर रहें और कानों से कोई भी शब्द न सुनें। विषयों के परित्याग का अर्थ यह है कि मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों में राग द्वेष न किया जाय। प्रत्येक अवस्था में समभाव में रमण करना और मन एवं इन्द्रियों में विषम भाव धारण न करना यही विषय प्रमाद के त्याग का अर्थ है।

(७)

नदी में आया हुआ वेग बाढ़ का रूप धारण करके घोर क्षोभ उत्पन्न कर देता है। मगर चतुर इन्जीनियर बाँध बना कर और नहरें निकाल कर जब उस वेग को शान्त कर देते हैं या दूसरी तरफ मोड़ देते हैं तो वही लाभदायक बन जाता है। यही बात यौवन के प्रबल वेग के विषय में भी समझो। विवेकवान् व्यक्ति यौवन के प्रबल वेग
देते हैं। भोगोपभोगों की दिशा से हटा कर उस

की दिशा म ले जाते हैं । तब वह अकल्याण के बदले लोकोत्तर कल्याण का करण बन जाता है ।

(३८)

पाड रूखी रेती का लड्डू बना कर दीवार पर मारोगे तो रेती चिपकगी नही, कि तु चिकनी मिट्टी का लड्डू वही चिपक कर रह जाएगा । तुम्हारे चित्त म भोगो की स्निग्धता होगी तो चौरासी क चक्कर में पड रहोग और भोगो के प्रति रूक्ष वृत्ति होगी तो चक्कर म नही पडोग ।

(३९)

ज्ञानी पुरुषो को पौद्गलिक सुख फीके और निस्सार प्रतीत होत हैं । उनकी रुचि उनको भोगने की नही होती । यद्यपि वह गहस्थावास म रहता है और सासारिक काम भी करता है फिर भी उनम निमग्न नही होता लिप्त नही होता जल म कमल की भाँति अलिप्त-रह कर ही वह दुनियादारी का व्यवहार करता है ।

(४०)

इद्रियो के विषय इद्र क समान आत्मा को क्रीत दास बनान वाल हैं ।

(४१)

ससग से वासना की वद्धि होती है ।

(४२)

वासनाएं बढ़ाने से बढ़ती और घटाने से घटती है। भोग भोगने से तृप्ति हो जायगी, यह कल्पना विपरीत है। भोग भोगने से अतृप्ति ही बढ़ती है--कभी तृप्ति नहीं होती। तृप्ति होती तो कभी की हो गई होती। अनंत जन्मों में जो तृप्ति नहीं हुई वह अब कुछ वर्षों में कम हो जायगी ?

(४३)

इन्द्रिय विजय का मार्ग सम्पत्ति का मार्ग है। अर्थात् यदि तू अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है तो तुझे इसी लोक में शांति संतोष और निराकुलता रूप परम सम्पत्ति प्राप्त होती है और परलोक में दिव्य सुख की प्राप्ति होगी।

(४४)

संसार का समस्त विषय जनित सुख परावलम्बी, तुच्छ और अनुपादेय है। साथ ही क्षणिक भी है। स्वेच्छा-पूर्वक इसका परित्याग करके परमात्मा का भजन करने से वचनागोचर आनन्द प्राप्त होता है। उसके फलस्वरूप मोक्ष का अमर सुख मिलता है।

(४५)

लोहे के ऊपर कितना ही वजनदार पत्थर पटका, लोहा फलता नहीं लेकिन उसी को आग में रख दिया

कर पानी-पानी हो जाता है इमा प्रकार मजबूत से मजबूत मन वाले भी खराब निमित्त मिलने पर खराब हो जाते हैं। अतएव जो मन का निग्रह करना चाहते हैं, उन्हें प्रतिकूल सयोगो से सदैव बचते रहना चाहिए।

(४)

लोग प्रेम के नाम पर बहुत भ्रम में हैं। वे समझते हैं कि विषय वासना ही प्रेम है। किसी भी ऐरी-गैरी को घर में डाल लेते हैं कि प्रेम हो गया। परन्तु कहाँ प्रेम की सात्विकता और पवित्रता और कहाँ वासना की गन्दगी ! शुद्ध सहज एवं सात्विक स्नेह अगर सुधा के समान है तो विषयानुराग विष के समान है। दोनो में प्रकाश और अंधकार के समान अंतर है।

(४७)

जब तक दुविधा है तब तक पूर्ण आत्म-निष्ठा नहीं हो सकती। ससार के सुख भी चाहो और मोक्ष की कामना भी करो तो यह नहीं बन सकता।

(४८)

कामना मात्र त्याज्य है। चाहे वह इहलौकिक हो अथवा परलौकिक। कामना वह विष है जो धर्माचरण के अमृत को भी विषाक्त बना देता है। अतएव उसका त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।

—: कर्म-फल :—

(१)

कार्मण वर्गणा के पुद्गल द्रव्य कर्म कहलाते हैं और राग-द्वेष आदि जीव के कषाय-भाव भाव कर्म कहलाते हैं। इन दोनों में कार्य-कारण भाव है। द्रव्य कर्म जब उदय में आते हैं तो उनके निमित्त से राग-द्वेष आदि भाव कर्म उत्पन्न होते हैं और जब भाव कर्म उत्पन्न होते हैं तो नये कार्मण वर्गणा के पुद्गल (द्रव्य कर्म) आत्मा के साथ बंध जाते हैं। अविच्छिन्न रूप से यह प्रवाह चलता आ रहा है।

(२)

द्रव्य कर्मों से भाव कर्मों की उत्पत्ति होती है और भाव कर्मों से द्रव्य कर्म बंधते हैं। जैसे मुर्गी से अंडा होता है और अंडा से मुर्गी होती है अथवा बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न है उसी प्रकार द्रव्य कर्म और भाव कर्म में भी परस्पर कार्य-कारण भाव है।

(३)

समान साधन होने पर भी किसी को सफलता और किसी को असफलता मिलती है, कोई लाभ और कोई हानि

उठाता है इन सब का कारण क्या है ? बाहर से तो सब एक से दिखाई देते हैं फिर भी काम में भिन्नता है तो कोई अदृश्य कारण होना चाहिए। वह अदृश्य कारण पूर्वोपार्जित कर्म ही है। आत्मा पुनर्जन्म न धारण करता हो तो पूर्वोपार्जित कर्म कैसे फल दे सकते हैं ?

(४)

बीमार कहता है अमुक औषध को सेवन करने से ज्वर चला गया किन्तु औषध ने भीतर जाकर किस प्रकार से ज्वर से लड़ाई की और क्या काम किया यह बात दुनियाँ को मालूम नहीं होती। फिर भी वह यह काम करती ही है। इसी प्रकार मनुष्य या अन्य कोई भी प्राणी जब पाप कर्म करता है तो यह नहीं मालूम होता कि पाप कर्म किस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों का अच्छादन करते हैं ? वह यह भी नहीं जान पाता कि कब कितने कर्मों का बंध हो गया है, परन्तु कर्म औषध की भांति धीरे-धीरे अपना काम करते हैं। तुम चाहे दिन भर के अपने विचारों का पता न लगा सको मगर कर्मों को सब पता है। तुम जानो या न जानो कर्म तो लिखा लेंगे और राई-राई का लेखा लेंगे।

(५)

कई लोग कहते हैं परलोक ढकोसला है। हम पर-लोक नहीं मानते। मैं ऐसे लोगों से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे दिल में जो यह विचार उत्पन्न हुआ है सो प्रबल पाप

का परिणाम है। तुम्हारा हित इसी मे है शीघ्र से शीघ्र इस मिथ्या विचार को दूर कर दो। क्योंकि परलोक है और तुम्हारे न मानने से मिट नही सकता। पागल कहता है— सरकार किस चिडिया का नाम है हम नही जानते। मगर जब वह उत्पात मचाता है तो पागलखाने म बन्द कर दिया जाता है और डडो का मार मार कर उसकी अक्ल दुरस्त का जाती है। जब उसकी अक्ल ठिकाने आती है तो वह मान लेता है कि सरकार है। यही बात तुम्हारे सम्बन्ध म होगी

(६)

कर्म यद्यपि जड हैं तथापि चेतना का ससग पाकर वे उनमे फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जस अफीम म मस्ती पन्न कर देने की शक्ति है शराब म पागल बना देनेकी शक्ति है दूध म पुष्टि की शक्ति है वसे ही कर्मो म शुभ अशुभ फल दनेकी शक्ति है।

(७)

जस नदी के प्रवाह में कोई भी जल बिन्दु एक जगह स्थिर नहीं रहता तथापि प्रवाह स्थिर है इसी प्रकार कर्मो का प्रवाह अनादि है। पुराने कम स्थिति का परिपाक होने पर अपना अनुभव फल देकर अलग हो जाते है और नये कम बँधते रहते हैं। अतएव कर्मो की परम्परा अविी

चल रही है। कोई भी एक कर्म अनादि काल से नहीं है किन्तु कर्म प्रवाह अनादिकालीन है।

(८)

जब कोई व्यक्ति किसी से भी रुपया उधार ले आता है और पहला चुका कर फिर कुछ ले आता है। फिर कुछ देता है और फिर कुछ ले आता है। इस प्रकार पुराना ऋण चुकाता जाता है और नया ले आता है और अपना खाता चालू रखता है इसी तरह जीव नये कर्म उपार्जन करता जाता है और पुराने भोगता जाता है।

(९)

भाइयो! पुण्य और पाप की शक्तियाँ संसार में बड़ी जबर्दस्त शक्तियाँ हैं। मकान बदल सकते हो, वस्त्र बदल सकते हो, आभूषण भी चाहो तो बदल सकते हो किन्तु पुण्य और पाप को नहीं बदल सकते। उनके फल अनिवार्य और अमिट हैं।

(१०)

पूर्व जन्म के संस्कार अवश्य ही आत्मा में संचित रहते हैं और और वर्तमान जीवन बहुत कुछ उन्हीं संस्कारों से प्रभावित एवं संचालित होता है।

(११)

फोनोग्राफ बाजे की चूड़ी में राग भरा हुआ है। किन्तु वह यों अनायास नहीं निकलती। बाजे में चाबी भरी

जानो है सुई लगाई जाती है । तब उसमें से वसी ना आवाज निकलता है जैसे गाने वाले ने गाई थी । चूंकि वह आवाज जमा न होता तो सुई लगाने पर भी बहक न निकलती। इसी प्रकार अपने भीतर भी पहले जन्म की और उससे भी पहले जन्म की अनेक घटनाओं के संस्कार जमा है। जैसे जैसे निमित्त मिलते हैं उसी प्रकार उनका स्मरण आता है।

(११)

जैसे बीज और वृक्ष की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है उसी प्रकार द्रव्य कर्म और भाव की परम्परा भी अनादिकाल से चली आ रही है अगर किसी बीज को जला दिया जाय तो अनादि काल से चली आने वाली परम्परा नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार कर्मों की परम्परा को भी तपस्या आदि की आग मे भस्म किया जा सकता है।

(१२)

जैसे रोटी का एक कौर खाया जाता है तो वह पेट में जाकर रस रक्त मांस अस्थि मज्जा वीर्य आदि के रूप में परिणत होता है उसी प्रकार आप जो हिंसा करते हैं झूठ बोलते हैं चोरी करते हैं, दूसरों का अहित सोचते हैं, परस्त्री की तरफ बुरी नीयत से ताकते हैं, क्रोध मान, माया लोभ करते हैं, तो इन सब से सात या आठ कर्मों का बंध ही होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे आपकी

पर भी भोजन से रस, रक्त मांस बनते हैं। किसी के न समझने के कारण कर्मों का बंध रुक नहीं सकता।

(१४)

जैसे किसी-किसी दवा का प्रभाव तीन वर्ष तक रहता है, अमुक शराब का नशा अमुक समय तक रहता है, इसी प्रकार कर्मों का प्रभाव भी भिन्न-भिन्न समय तक रहता है।

(१५)

जीव अपने किये कर्मों के फलस्वरूप ही नाना प्रकार की दुःखमय योनियों में भटका है और भटकता है। या किसी राजा महाराजा तक कि इन्द्र की भी शक्ति नहीं कि वह किसी को दुर्गति में भेज सके। न कोई किसी को सुगति दे सकता है और न दुर्गति दे सकता है। अपने-अपने कर्म ही जीवों को सुगति-दुर्गति के पात्र बनाते हैं।

(१६)

भाइयो ! तुम्हें परलोक की यात्रा करनी है आप जहाँ जाना चाहें वहीं जा सकते हैं। इसके लिए कोई रोकटोक नहीं है। मगर तीसरे दर्जे का टिकिट लेकर अगर दूसरे या पहले दर्जे में बैठना चाहेंगे तो नहीं बैठ सकेंगे। रेल्वे की यात्रा में कदाचित् पोल चल जाती है, मगर परलोक की यात्रा में पोल नहीं चल सकती। वहाँ तो जिस दर्जे का टिकिट खरीदेंगे उसी दर्जे में जाना ही पड़ेगा। अतएव अगर आपकी इच्छा प्रथम

या द्वितीय दर्जे म जान की हो तो आपको पहले ही ध्यान देना चाहिये । पहले ही उसका मूल्य चुकाना चाहिए । वह मूल्य क्या है ? रुपयो और पसो म वह मूल्य नही चुकाया जाता । वह दान त्याग, तप व्रत, सयम, नियम आदि के रूप म चुकाया जाता है । निश्चित समझो, तनिक भी सदेह मत रखना कि जसा करोगे वसा भरोगे ।

(१७)

कर्मों के आगे बडे-बडे बलवान भी दुबल बन जाते ह उनके आगे किसी की नही चलती । कम क्षण भर में राजा को रक और रक को राजा बना देते ह । वास्तव में कर्मों की गति बडी विचित्र है ! इन कर्मों ने महान स महान पुरुषो के साथ भी रियायत नहीं की । रामचन्द्र जसे मर्यादा पुरुष को सताया भगवान् ऋषभ देव से भी बदला लिया और महावीर स्वामी को भी कष्ट पहुचाया । जब ऐसे लोकोत्तर महापुरुष भी क्रूरता स नही बच सकते तो साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है ?

(१८)

किसी भी तीथकर, अवतार, पगम्बर की ताकत नही कि वह किये हुए कर्मों का फल न भोगे । जो मिर्च खायेगा उसके मुह मे जलन हुए बिना नही रहेगी । कोई शराब पी ले और चाहे कि नशा न आवे यह कभी हो सकता है ? भाई इस विषय में किसी की भी नही चलती है । कोई कहे कि यह

बड आदमी है इन्हें गुनाह नहीं लगेगा, परन्तु गुनाह उसको ना क्या स्वयं बाप को भी नहीं छोडने वाले है। जहर अपना काम करेगा और अमृत अपना काम करेगा। चाहे भरुजी हो या बालाजी हो पीर हो या और कोई हो, किसी का भी ताकत नहीं कि गुनाह करके वह सब रिस उसका फल नहीं भोगेगा। कर्मों के आगे न शनिजी की चलती है न सूरजजी की चलती है।

(१६)

कोई असाधारण व्यक्ति हो या साधारण आदमी हो, भले ही तीर्थंकर ही क्या न हो यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपार्जन किये है तो उन्हें भोगना ही पडता है। समरथ को नहिं दोष गुसाईं की बात कर्मों के आगे नहीं चल सकती। अच्छे कर्म करोगे अच्छा फल पाओगे बुरे कर्म करोगे बुरा फल मिलेगा। कर्म करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। मगर फल भोगना इच्छा पर निर्भर नहीं है। शराब पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है मगर जो पी लेगा, उसका मतवाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। उसकी इच्छा न होने पर भी उसे मतवाला होना पडेगा। इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि खाली हाथ मत जाना।